अशोक कुमार

भाग्यमूफलतः सर्वत्र विद्या न च पौरूषमू

दुनिया फ़िल्मों की

अशोक कुमार

नमन प्रकाशन
नई दिल्ली-110002

पहला संस्करण : 2016
ISBN : 978-81-8129-685-6

दुनिया फ़िल्मों की पूर्णतयः काल्पनिक उपन्यास है इसलिये इसमें आये किसी नाम, किसी शख़्स या किसी घटना इत्यादि का किसी से मेल खाना महज़ इत्तेफ़ाक है

अशोक कुमार

नमन प्रकाशन
4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002
फोनः 23247003, 23254306

श्री नितिन गर्ग द्वारा नमन प्रकाशन के लिए प्रकाशित तथा
एशियन ऑफसेट प्रिंटर्स, मौजपुर, शाहदरा, दिल्ली में मुद्रित।

Duniya Filmon Ki ***By* Ashok kUmar**

समर्पण

प्रेरणा और आभार—राजेन्द्र यादव

पहली बात

श्री राजेन्द्र यादव जी यदि ज़िन्दा होते तो यह सब लिखने की ज़रूरत नहीं होती क्योंकि एक तो तब ऐसा लगता कि यह बात मैं उनकी चापलूसी में उनसे कुछ फ़ायदा उठाने के लिए कर रहा हूँ और दूसरे कि उपन्यास के शुरू में तो आ ही गया है 'प्रेरणा और आभार— राजेन्द्र यादव' तब उस बात को आगे बढ़ाने का क्या प्रयोजन! लेकिन अब वो नहीं हैं और इस बारे में लिखना आवश्यक हो गया है।

राजेन्द्र यादव जी का नाम तो ज़ाहिर है मैंने सुन ही रखा था। उनके लेखन के ज़रिये उनके प्रति आदर भाव था लेकिन जब पहली बार मेरी कहानी 'हँस' में छपी तो उनसे मिलने के लिए मैं दिल्ली गया। तमाम प्रकार के संपादकों से पाला पड़ चुका था इसलिए इनसे मिलने से पहले एक 'ऑ' था कि न जाने किस प्रकार की 'एरोगैन्स' से मिलें। लेकिन जब मैं गया तो राजेन्द्र जी से मिलना क़तई मुश्किल नहीं था। उनसे बात-चीत ऐसे हुई जैसे कोई पहले से परिचित हों। तब मैं भी पाईप पीता था तो कुछ देर तो तंबाकू, पाईपों और पाईप-लाइटरों पर बात हुई फिर उन्होंने मेरे बारे में पूछा। जब मैंने कहा कि 'शॉर्ट-फ़िल्म्स' बनाता हूँ— तो उन्होंने कहा 'फ़िल्मी दुनिया' के ऊपर उपन्यास लिखो। बात मेरे दिमाग में ठहर गई। फिर दो साल बाद ये बीज फूटा और 'दुनिया फ़िल्मों की' बना। मैंने यादव जी से इसरार किया कि यदि वे इसे एक बार देख लें तो मुझे भरोसा हो जाये कि मैं ठीक राह पर हूँ। यादव जी ने मेरा 'घसीटा लिखी हुई पाँडुलिपी' पढ़ी ही नहीं उसके ऊपर अपनी राय का पत्र भी लिखा। (अच्छे-अच्छे संपादक ज़रा-सी लिखावट साफ़ न हो तो सामग्री लौटा देते हैं!!) उनके उस पत्र के आधार पर मैंने इस उपन्यास का दूसरा ड्राफ़्ट लिखा जिसको उन्होंने फिर पढ़ा और उस पर भी अपनी टिप्पणीं दी। जो आप पढ़ेंगे वह उपन्यास का उसके बाद के भी बाद का ड्राफ़्ट है। इस उपन्यास का श्रेय पूरी तरह— प्रेरणा से लेकर पूर्णता तक— राजेन्द्र यादव जी को ही जाता है।

मैं उनको उस पहली मुलाक़ात के पहले जानता नहीं था। मैं कोई 'सैलिब्रिटी' भी नहीं जिसको यादव जी कोई 'स्पेशल ट्रीटमेंट' देते। किसी भी मामूली शख़्स को बढ़ावा देना, हौसला-अफ़ज़ा करना और उसके अन्दर के लेखक को उभार डालना राजेन्द्र यादव जी ही कर सकते थे और उन्होंने किया। शायद मेरे जैसे हिंदी जगत में तमाम होंगे जिनकी

कहानी मुझसे मिलती-जुलती होगी। इसलिए उपन्यास के शुरू में लिखा गया है– 'प्रेरणा और आभार– श्री राजेन्द्र यादव'।

एक आला दर्जे का लेखक और एक आला दर्जे का इंसान– दोनों एक साथ होने का नाम था राजेन्द्र यादव!

'दुनिया फ़िल्मों की' बंबई की फ़िल्मी दुनिया का सत्तर के दशक से लेकर अस्सी के दशक के मध्य तक का ख़ाका है। यह वह दौर था जब फ़िल्मों में 'ऐन्ट्री' मुश्किल थी, भाग्य पर मुनहसिर थी और उस दौर का बिजनेस आज से बिल्कुल भिन्न था। अस्सी के दशक के बाद और ख़ासकर नव्वे के दशक से जो वदलाव आया वह बिल्कुल अलग है और उसकी चर्चा और रोचक और-और रोमाँचकारी है। यदि पाठकों को यह उपन्यास पसंद आया तो उस दौर के उपन्यास लिखने का हौसला बढ़ेगा, जिसके लिखने का और पढ़ने का– दोनों का अपना ही मज़ा होगा।

—अशोक कुमार

1

उसने मेकअप रूम के दरवाज़े पर दस्तक दी।

"येस!" अन्दर से आवाज़ आई।

उसने आहिस्ता से दरवाज़ा खोलकर अँदर झाँककर कहा–

"सर, शॉट रेडी है।"

"हाउ डू यू सी मी?"

लड़के की समझ में नहीं आया।

"आई एम हाफ़ लाइँग एण्ड रीडिंग दिस बुक..." यूसुफ़ ने कहा, "थोड़ी देर और पढ़ूँगा। फिर चाय पियूँगा और तब तुम आना, कॉस्ट्यूम दे जाना। मैं तैयार होकर शॉट के लिए आ जाऊँगा।"

यूसुफ़ उस समय का बहुत बड़ा फ़िल्म स्टार था। बहुत बड़ा। उससे अच्छे-अच्छों की बात करने की हिम्मत नहीं पड़ती थी।

लड़का सर हिलाकर चला गया। उसने जाकर डायरेक्टर से कह दिया, "सर किताब पढ़ रहे हैं। थोड़ी देर में आएँगे।"

डायरेक्टर सर पकड़कर कुर्सी पर धम्म से बैठ गया– "ये स्टार्स साले...! अभी उठेगा साला चाय माँगेगा... फिर लाइने पूछेगा... फिर रीटेक देगा... इधर मेरी सनलाइट जा रही है। चली गई तो साला प्रोड्यूसर मुझे गाली देगा और एक दिन की शूटिंग बढ़ जाएगी सो और!"

फिर कुछ सोच कर डायरेक्टर ने लड़के को बुलाया– "अरे ओए... हाँ हाँ तू... इधर आ... नाम क्या है तेरा?"

– "सलिल"

– "हाँ! जो भी है... सुन प्रोडक्शन वाले को बोल उस अच्छे वाले टी-सैट में चाय बनवा के यूसुफ़ साव के कमरे में भेज दे। ....जा!"

– "वो बोले थोड़ी देर बाद!"

– "अबे तू भेज तो दे... जो बोलता हूँ वो कर!"

– "ठीक है सर!"

सलिल प्रोड्यूसर के यहाँ दिन रात का नौकर था। उन्हीं के दफ़्तर में रहता था। चाय बनाता था। ख़ाना बनाता था। साफ़-सफ़ाई रखता था। सामान सम्भाल कर रखता था।

बहरहाल सभी कुछ। शूटिंग पर बुला लिया जाता था कि वहाँ मदद हो जाए, इधर-उधर भागदौड़ के लिए कोई हो जाए और एक एकस्ट्रा स्पॉट ब्वॉय न रखना पड़े।

सलिल ने प्रोडक्शन वाले को डायरेक्टर की तजवीज़ सुनाई।

– ''साले...! चाय ही ले जानी है तो तू नहीं ले जा सकता! ...एक स्पॉट ब्वॉय को इस काम के लिए फँसाऊँ...! ऐं...! चल जा, चाय बना। उधर से वो टी सैट ले जा और दे आ यूसुफ़ साब को चाय!... जा, जा... जल्दी कर, सनलाईट जा रही है।''

सलिल की ले जाई गई चाय यूसुफ़ को बेहद पसन्द आई।

– ''तेरा नाम क्या है? यहाँ यूनिट में स्पॉट ब्वॉय है?''

– ''नहीं सर! मैं ऑफ़िस में काम करता हूँ।''

– ''खाना बनाना जानता है?''

– ''जी सर! ऑफ़िस में खाना मैं ही बनाता हूँ।''

– ''... हूँऽ ...!'' फिर यूसुफ़ उठा, ''चल जाकर उनसे कह दे लाइटिंग करें मैं आता हूँ।''

सैट आउटडोर में था। बड़ा-सा गाँव का मैदान जिसमें गाँव वाले अच्छी फ़सल की कटाई सम्पूर्ण होने की खुशी में गाना-बजाना कर चुके थे। अब वहाँ एक इमोशनल सीन करना था। जो हालाँकि फ़िल्म की कहानी में बहुत बाद में आएगा लेकिन क्योंकि इसी सैट पर था इसलिए शूट अभी ही करके रख लेना था। सनलाईट के साथ-साथ जो लाइटिंग थी वह काफ़ी पेचीदा थी। तमाम घर, खेत, लोग, बैकग्राउंड में दिखने थे। और उस रोशनी के हिसाब से स्टार्स के चेहरे भी साफ़ दिखने थे। सुबह से आज के दिन और कुछ नहीं हुआ– सिर्फ़ लाइटिंग ही हुई। बस यूसुफ़ तथा एक और कैरेक्टर के आने के बाद क्लोज़ अप के लिए थोड़ा लाईट का एडजस्टमेंट करना पड़ेगा।

यूसुफ़ के आते ही सैट पर सभी में जैसे फुर्ती आ गई।

– ''चलो... चलो... फुल लाईट्स... फुल लाईट्स!''

डायरेक्टर यूसुफ़ के पास गया। उसने यूसुफ़ को उसकी लाइनें समझाई।

– ''तो ये तो ज़रा आहिस्ता बोलना पड़ेगा।'' यूसुफ़ ने कहा।

– ''जैसे आपको ठीक लगे सर! यू आर सच ए ग्रेट एक्टर सर!''

यूसुफ़ की नाक और हवा में हो गई। बोला– ''ठीक है, चलो टेक करो।''

– ''डायरेक्ट टेक सर?''

– ''डायरेक्ट टेक!''

डायरेक्टर चिल्लाया, ''चलो, ऑल रेडी... सायलेंस... टेकिंग!''

– ''टेकिंग?'' कैमरामैन ने सवाल किया, ''डायरेक्ट टेक? ... एक रिहर्सल ले लो।''

– ''ओए बोला न यार टेक... सर को डायरेक्ट टेक चाहिए...। चलो... चलो... टेकिंग! ... सायलेंस! ... स्टार्ट साउंड! ... डायरेक्टर जैसे एक साँस में बोल गया।

कैमरा वाले ने सर पकड़ लिया, ''मैं फ़्रेम कैसे एडजस्ट करूँगा यार!'' पर सर को तो डायरेक्ट टेक चाहिए था!

साउंड रिकॉर्डिस्ट की आवाज़ आई, ''रोलिंग! कैमरा!''

– कैमरामैन ने कहा ''क्लैप!''

असिस्टैंट क्लैप लेकर सामने आ गया, ''सीन वन फ़ोरटी एट शॉट फ़ाईव एण्ड एट, टेक वन!'' और उसने स्लेट के ऊपर का फ़ट्टा फ़टाक से मारा और फ़्रेम से आउट हो गया।

डायरेक्टर ने कमाँड दिया– ''एक्शन!''

एक्शन के साथ यूसुफ़ को फ़्रेम में आना था। एक दूसरे एक्टर की तरफ़ गुस्से से देखना था। इसके बाद दूसरे एक्टर का एक दो जुमले का डायलॉग था जिसके जवाब में यूसुफ़ को उसे एक लम्बी चौड़ी लताड़ लगानी थी जिसके लिए यूसुफ़ का अलग से एक क्लोज़-अप लिया जाना था। यूसुफ़ के दोनों शॉट इसी जगह से इसी एक शॉट में लिए जाने वाले थे जोकि फ़िल्म में काटकर दो जगह लगेंगे।

यूसुफ़ के साथ जो दूसरा एक्टर था वो अपनी लाइनें बार-बार भूल जाता था। शायद यूसुफ़ जैसे बड़े स्टार के सामने होने से वो नर्वस हो रहा था। यूसुफ़ बहुत चिड़चिड़ा गया।

– ''मेरे ख़्याल से इस जगह तुम इस लड़के को क्यों नहीं खड़ा कर देते... ये लड़का इन्टेलीजेन्ट लगता है।'' यूसुफ़ ने यह बात हालाँकि दूसरे एक्टर को बेइज़्ज़त करने के लिए कही थी, डायरेक्टर ने समझते हुए भी नासमझ बनकर सलिल की तरफ़ इशारा करते हुए कहा, ''इसने तो कभी एक्टिंग की नहीं सर!''

– ''तो क्या हुआ... मौक़ा दोगे तो करेगा न... वैसे इसमें रोल तो कुछ है ही नहीं।'' यूसुफ़ की साफ़ मर्जी थी।

– ''ओए... क्या नाम है तेरा...'' डायरेक्टर ने सलिल को पास बुलाते हुए कहा, ''चल जो भी है... देख...साब तेरी तरफ़ देखेंगे, तू बोलना 'मैं कुछ नहीं जानता'... ठीक है!?''

सलिल ने कहा, ''ठीक है!'' मन में उसके लड्डू-बर्फ़ी-पेड़े सब फूट रहे थे कि आज अपनी आराधना सफ़ल हुई। एक्टर बनने के ख़्वाब की पहली सीढ़ी मिल गई। और वो भी इतने बड़े स्टार के साथ।

शॉट में सारा कमाल यूसुफ़ का ही था। एक टेक में ओ.के. हो गया। सलिल ने यूसुफ़ के पाँव छूए। डायरेक्टर और प्रोड्यूसर के पाँव छूए। यूसुफ़ ने उसे 'जीते रहो' का आशीर्वाद दिया। प्रोड्यूसर ने उसे उचटी निगाह से देखा। प्रोड्क्शन मैनेजर ने हँसकर उसे गाली दी, ''भैंड़ के... ! ... साले...! अगर तू सचमुच हीरो बन गया तो तब तो हमें तुझको चाय पिलानी पड़ेगी! हँ हँ हँ हँ...!''

2

सलिल झाँसी के पास ललितपुर में पैदा हुआ। उन्नीस साल तक वहीं पला-पढ़ा। फ़िल्में देख-देखकर उसे एक्टर बनने का कीड़ा काट गया। ललितपुर में तो अपने जौहर दिखाने का उसे कोई ख़ास मौक़ा मिलता नहीं था लेकिन समझता वह अपने आप को किसी एक्टर से कम नहीं था। सत्तर का शुरुआती दशक था। दिलीप कुमार और राजेन्द्र कुमार अपनी-अपनी ऊँचाईयों से धीरे-धीरे नीचे आने लगे थे। राजकपूर, देव आनंद जमे हुए थे– वो शायद इसलिए कि उनकी अपनी प्रोड्क्शन कम्पनियाँ थीं और वे खुद को लेकर खुद की फ़िल्में बनाते थे। राजेश खन्ना उड़ान भरने की तैयारी में थे और तमाम और तब्दीलियाँ बड़ी तेज़ी से हुए जा रही थीं।

हिन्दी में 'माधुरी' एक पत्रिका थी जो फ़िल्मों को समर्पित थी। लेकिन वह ज़रा 'सीरियस' पत्रिका थी! हालाँकि उसमें तमाम फ़िल्मी ख़बरें, थोड़े बहुत चैक किए गये 'गॉसिप', नये लड़के-लड़कियों की तस्वीरें इत्यादि छपते थे लेकिन पत्रिका का ज़्यादातर हिस्सा फ़िल्म इतिहास, स्टार्स और प्रोड्यूसर्स के इन्टर्व्यू, फ़िल्म निर्माण से जुड़ी ख़बरों का होता था। इसमें अभिनय, फ़िल्म निर्माण, पट कथा लेखन से संबन्धित जानकारी भी दी जाती थी। सलिल वो पढ़ता था और उसी से फ़िल्मों के बारे में अपनी जानकारी बढ़ाता था। उसमें एक लेख में कहीं उसने पढ़ा था कि कभी अशोक कुमार जैसे बड़े कलाकार भी शीशे के सामने खड़े होकर एक्टिंग की प्रैक्टिस करते थे। सलिल ने भी वही सीख लिया था। वह कई-कई घंटे आइने के सामने खड़ा होकर देखी हुई फ़िल्मों के डायलॉग उसी अंदाज़ में बोल-बोलकर अपनी एक्टिंग की प्रैक्टिस किया करता। यह जुनून इतना बढ़ा कि अक्सर सामान्य जीवन में बात करते समय भी वह किसी-न-किसी फ़िल्मी हीरो की आवाज़ की नक़ल उतारते हुए ही बात-चीत करता।

– "जे कैसे बोलन लगे तुम आजकल...!" उसकी माँ अक्सर कहा करती।

– "जे हीरो गिरी छोड़ो," उसके मास्टर साहब कहते, "पढ़ाई-लिखाई में ध्यान देओ! कछु काम धाम पे लगो... तुमाए पिताजी इत्ते अच्छे आदमी हैंगे, जीवन भर पूजा पाठ करत रए और तुम जे भाँड़ गिरी के चक्कर में पड़ गए।"

लेकिन यह तो कोई भी कहता। वो समय ही ऐसा था जब फ़िल्में लोग देखते ज़रूर थे लेकिन फ़िल्म वालों के बारे में लोगों का नज़रिया कोई ख़ास अच्छा नहीं था। लड़के

को तो चलो एक बार लोग फ़िल्मों में काम करने के लिए बरदाश्त भी कर लें, लड़कियों के लिए तो– बाबा रे! कोई न जाने दे।

हालाँकि सलिल लड़का था लेकिन उसके पिताजी श्यामा प्रसाद वर्मा– जो कि सरकारी मुलाज़िम थे– को सलिल का फ़िल्मों की तरफ़ रूझान क़तई नागवार था।

– "पास हो जइयो... नईं तो इस बार तुम फ़ेल भए तो निकार दैहें तुम्हें घर से और भाड़ में गए फिर तुम और तुमाई जे भाँड़ गिरी।" इम्तिहानों से पहले पिताजी ने इस बार साफ़ कर दिया था।

ऐसा नहीं था कि उन्होंने पहले कई बार इस तरफ़ अपनी नापसंदगी ज़ाहिर न की हो लेकिन इस बार बात ज़रा ज़्यादा सख़्त और साफ़ थी। आख़िर बाप थे, क्या करते? दसवीं कक्षा में तीन बार तो सलिल फ़ेल हो चुका था। चौथी बार बैठ रहा था। कोई भी बाप अपने लड़के से शायद इसी टोन में बात करता।

इम्तिहान हो गए। उसके बाद नतीजा आने के इन्तिजार में भी दो महीने गुज़र गए। इस बार सलिल मंदिरों-मंदिरों जाता रहा, प्रार्थना करता रहा– 'प्रभू, पास करवा देना!' लेकिन उसके मन में डर था कि कहीं इस बार भी फ़ेल हो गए तो 'हाए राम! क्या होगा!'

नतीजा आया तो अख़बार में छपा। उसमें सलिल का नम्बर थर्ड डिवीजन तक में नहीं था। दूसरे दिन सुबह सलिल स्कूल गया। वहाँ देखा तो श्रीमान् फिर फ़ेल!

लेकिन इस बार वो नतीजा लेकर घर नहीं गया। वह सीधे स्टेशन गया। उसने बम्बई की गाड़ी पकड़ी और ठान ली कि अब इस दुनिया में उसके लिए सिवाए हीरो बनने के और कोई रास्ता नहीं बचा है।

यह प्लानिंग उसके दिमाग़ में अख़बार में नतीजा देखने के बाद से चल रही थी और इसलिए उसने कुछ पैसे अपनी माँ के सन्दूक़ से चोरी करके अपने पास रख लिए थे– टिकट के काम आएँगे।

ललितपुर छोटी जगह थी। झाँसी से बम्बई की ओर जाने वाली कुछ गाड़ियाँ ही रुकती थीं। गाड़ियों का समय लोगों को ज़बानी मालूम होता था और वैसे भी शहर के ज़्यादातर लोग ज़्यादातर लोगों को जानते भी थे। सलिल को यह भी दिक्कत थी कि कहीं कोई जान-पहचान वाले मिल गए तो तमाम सवाल पूछेंगे 'स्टेशन पर कैसे', 'कहाँ जा रहे हो' 'कोई आ रहा है क्या' वग़ैरह-वग़ैरह... और उस सूरत में गाड़ी चल देने से पहले ही ख़बर उसके घर तक पहुँच जाएगी। इसलिए सलिल ने गाड़ी आने के बाद टिकट खरीदा और गाड़ी के सीटी देने के बाद गाड़ी में चढ़ा। और चल दिया बम्बई!– सपनों में बसने वाले, सपने दिखाने वाले शहर!

सलिल ने सिर्फ़ वी.टी. स्टेशन की तस्वीर बिस्कुट के डिब्बे पर छपी देखी थी... या कभी-कभी किसी फ़िल्म में। वह न बम्बई में किसी को जानता था न किसी जगह को जानता था। लेकिन आज के तमाम स्टार्स भी तो कभी ऐसे ही आए थे। 'माधुरी' में कितनी बार तो ऐसे स्टार्स के बारे में पढ़ चुका था। कुछ पाना है तो कुछ खोना पड़ेगा! 'स्ट्रगल' शब्द उसे जैसे कंठस्थ हो गया था। 'स्टार्स ऐसे नहीं बन जाते। स्ट्रगल करनी पड़ती है।' और

इसीलिए जब खचाखच भरी गाड़ी में उसे खड़े रहने की जगह भी बड़ी मुश्किल से मिल पाई तो उसने सोचा कि उसकी 'स्ट्रगल' शुरू हो गई है।

भोपाल आते-आते शाम होने लगी थी। उसे ख़्याल आया पिताजी दफ़्तर से घर आ गए होंगे। सलिल के नतीजे और उसके कहीं न पाए जाने के बाद उसकी तलाश शुरू हो गई होगी। दोस्तों के घर, चाय के अड्डे पर— सब जगह देखा जा चुका होगा।

— "अरे हट न यार! जाने दे!" एक मुसाफ़िर ने हाथ से सलिल को बाक़ायदा हटाते हुए हड़काया।

— "इधर जगह ही नहीं है... किदर हटूँगा... आप इधर से निकल जाओ!" सलिल ने सिकुड़ते हुए कहा।

— "साल्ला...! मूतने जाने को भी प्रॉब्लम है! थोड़े दिन में लोग टॉयलेट में भी खड़े रहेंगे! हँ हँ हँ हँ ...!"

— "पैदा भी तुम्हीं करो और गाली भी तुम्हीं दो! हँ हँ हँ हँ ...!" दूसरे ने चुटकी ली।

इटारसी में उसने पूड़ी-तरकारी लेकर खाई। पानी पिया। लेकिन वापस गाड़ी में चढ़ना तब तक और दुश्वार हो चुका था। ख़ैर किसी तरह वो चढ़ा और अन्दर एक पैर ही रख पाया कि तब तक गाड़ी चल दी। एक हाथ हैन्डल पकड़े, एक हाथ ख़ाली! एक पैर डिब्बे के अन्दर, एक हवा में लटका हुआ! और अन्दर वाला कोई भी उसे अन्दर आने देने को हिलने वाला नहीं!

— "अरे लड़का गिर जाएगा! ...उसे अन्दर आने दे!" एक अन्दर से चिल्लाया, "चल बेटा... आ जा... इधर आ... मेरा हाथ पकड़ ले... आ जा...!"

सलिल किसी तरह अन्दर घुस पाया।

— "थैंक्यू!" उसने कहा।

— "किधर जा रहा है?"

— "बम्बई।"

— "कोई है वहाँ?"

सलिल ने 'ऊँ हूँ' में सिर हिलाया। आदमी ने सर से पाँव तक सलिल का हुलिया देखा। — "भाग के जा रहा है?"

सलिल ख़ामोश, छूटती हुई ज़मीन देखता रहा। फिर उसने पूछा— "आप?"

— "मैं भी बम्बई!"

तब तक टॉयलेट का दरवाज़ा खुला। पेशाब-पाख़ाने का मिला-जुला भभका वहाँ से निकला और भीड़ के आपस में चिपकते-चिपचिपाते पसीने की बू से मिलकर एक अजीब-सी सड़ाँध पैदा करने लगा। हालाँकि ट्रेन रफ़्तार पे थी और उसके चलने से हवा खुले दरवाज़े से अन्दर आ रही थी लेकिन हवा के पास होने के लिए— भीड़ इतनी थी कि जगह ही नहीं थी।

— "बैठ जा यार! कहाँ तक खड़ा रहेगा!"

— "जगह कहाँ है?" सलिल ने कहा।

— "अब जितनी है उतनी तो है! आ जा... इधर आ जा... सर इधर रख ले, उधर पैर रख ले।"

रात हो चुकी थी। खाना खा लिया था। गाड़ी से उतरने की ज़रूरत अब थी नहीं। सलिल ने उस आदमी की बात मान ली। ज़रा-सा टेका लगा लिया। थोड़ी ही देर में उसे नींद आ गई।

हालाँकि इधर-उधर जब गाड़ी स्टेशनों पर रुकती या कोई यात्री अपना सामान उतार चढ़ा रहा होता या कोई इधर-उधर 'पास' हो रहा होता तब ज़रूर उसकी आँख खुल जाती लेकिन ज़्यादातर वो आँखे बन्द किये वहीं लेटा रहा। कभी सोता कभी जागता।

गाड़ी 'कल्याण' पहुँची तो तमाम लोग उतरने लगे।

— "लो भाई, बम्बई आ गया।"

— "बम्बई आ गया?" सलिल ने हड़बड़ाहट में उठते हुए कौतूहल से देखकर पूछा।

— "और क्या! कल्याण आ गया तो बम्बई आ गया... अब बचा क्या!... तुमको जाना किधर है?"

— "बम्बई!"

— "बम्बई तो काफ़ी बड़ा है।"

— "तो, बम्बई!"

— "ये ज़रा समझो बम्बई के थोड़ा बाहर है... तुम दादर उतरो... नहीं तो सीधा वी. टी. उतरो।"

अब थोड़ी जगह हो गई थी। सलिल ने इत्मीनान से उठकर ज़रा अँगड़ाई ली। कुछ हल्का-हल्का लगा। उसने जेब टटोली। पर्स ग़ायब था।

— "अरे मेरा बटुआ!"

फिर उसने उस चेहरे की तलाश की जिसने उसे बड़े प्यार से सर रखकर और पैर फ़ैलाकर सो जाने की तजवीज़ की थी।

— "वो कहाँ गया?"

— "कौन?"

— "वो जो मेरे पास... इधर बैठा था... जिसने मुझे यहाँ बैठाया था...!"

— वो तो कब का उतर गया।"

— "साल्ला!"

गाड़ी दादर रूकी। और ख़ाली हुई। उसके पन्द्रह मिनट बाद आया वी.टी.— आख़िरी स्टॉप। सलिल जब वहाँ उतरा तो उसकी जेब कट चुकी थी। दूसरी जेब में कुछ आठ-दस रुपये की रेजगारी थी। बदन पर एक जोड़ी कपड़े थे। आँखों में सपने थे। दिल में हौसला था। सामने चुनौतियाँ देता नया सूरज था। 'लारजर दैन लाईफ़' शहर था। लेकिन नज़र के सामने एक धुँध था। वापसी के रहे नहीं थे। यहाँ कुछ कर पाना मुश्किल दिखता था। आशा हाथ छोड़ गई थी।

3

– ''सलिल...! अबे ओ सलिल!''
प्रोड्यूसर ने दफ़्तर में घुसते साथ हाँक लगाई।
– ''जी सर!''
– ''तूने साले यूसुफ़ को क्या पट्टी पढ़ाई उस दिन...?''
– ''क्या सर?''
– ''शूटिंग के बाद तू यूसूफ़ के मेकअप रूम में इतनी देर क्या कर रहा था?''
– ''सर मुझसे पूछ रहे थे कि तू दफ़्तर में खाना बनाता है तो क्या-क्या बनाता है। मैंने कहा सब बनाता हूँ। बस!''
– ''अब तू मेरे दफ़्तर के लिए मुझे एक लड़का ला के दे... ऐसा लड़का जो तेरी तरह ही काम करे।''
– ''क्यों सर... मेरे काम का क्या होगा?''
– ''भई... यूसूफ़ बोलता है कि वो तुझे अपने घर में रखना चाहता है। तो तू जाएगा तो कोई तो यहाँ चाहिए न...!''
– ''तो आप मना कर दो।''
– ''अबे... वो मेरी फ़िल्म का हीरो है... इण्डस्ट्री का बड़ा स्टार है... मैं उसे कुछ भी मना नहीं कर सकता... तू समझा न...!''
– ''लेकिन मैं उनके यहाँ खाना बनाने नहीं जाऊँगा... उनके यहाँ जाऊँगा तो ड्राइवर बन के।''
– ''तुझे ड्राइविंग आती है?''
– ''तो सीख लूँगा।''
– ''वो क्या एक दिन में सीखी जाती है... कम-से-कम दो-तीन महीने तो लगेंगे... तब तक क्या बोलूँ मैं उसको!?''
– ''आप मत बोलो, मैं ही बोलूँगा... वो मेरे से अच्छे है। मेरी बात मानेंगे।''
– ''हुँह! एक्टर और अच्छा!... ठीक है... कल शूटिंग पर तू ही बात कर लेना। मैं कह दूँगा मैंने तुझसे कह दिया। ठीक है?''
– ''ठीक है सर!'' सलिल ने सिर हिलाया।

फिर प्रोड्यूसर नारंग साहब बग़ल में खड़े राइटर की तरफ़ मुड़े और बोले, ''साले को लैमिंगटन रोड से ताड़देव जाना ठीक से आता नहीं, ये ड्राइवर बनेगा।''
– ''ये ड्राइवर बनने नहीं जा रहा है,'' राइटर राही साहब ने कहा, ''ये तो यूसुफ़ की मुहब्बत में जा रहा है। उसके साथ दुनिया घूमेगा... शूटिंग देखेगा...।''
सलिल कन्नी काट कर भीतर जाने लगा। नारंग साहब ने पीछे से कहा, ''अरे देख ... राही साहब के लिए ज़रा चाय देता जा...! इलायची वाली!''
दूसरे दिन शूटिंग के बाद यूसुफ़ ने सलिल का ख़ासा लम्बा इन्टर्व्यू लिया। कहाँ से आया है। किस तरह के परिवार से है। खाने में क्या-क्या बनाना जानता है। सफ़ाई कर सकता है क्या। कपड़े धो सकता है क्या। उसका माहवारी ख़र्चा कितना है। वग़ैरह-वग़ैरह...।
फिर यूसुफ़ ने पूछा– ''तू भागा क्यों?''
– ''मुझे बंबई आना था।''
– ''क्यों? बंबई क्यों?''
– ''मुझे अभिनेता बनना है।''
– ''ओ... हो ऽ...!''
सलिल को लगा जैसे यूसुफ़ उस पर तन्ज़ कर रहा है। उसे एक मिनट के लिए अच्छा नहीं लगा था।
इसके दूसरे दिन शूटिंग थी। एक मंदिर का सैट था। शूटिंग तो किसी मंदिर पर भी हो सकती थी। लेकिन सैट इसलिए लगाना पड़ा कि यूसुफ़ को देखकर भीड़ पागल हो उठती थी और उसे सम्भालना मुश्किल हो जाता था। हर शख़्स उससे हाथ मिलाना चाहता था। हर लड़की उसे छूकर देखना चाहती थी। हर बच्चा उसे नज़रों से जैसे पी जाना चाहता था। और इस सब के कारण शोर इतना होता था कि शूटिंग का काम सुचारू रूप से हो ही नहीं पाता था। इसलिए भले ही पैसा ज़्यादा लग जाए लेकिन पिक्चर के हित में प्रोड्यूसर और यूसूफ़ का मत सदैव यही था कि शूटिंग सैट पर ही हो। हाँ ये दूसरी बात है कि अगर लोकेशन कहीं बीहड़ या रेगिस्तान या खेतों में हो– उस का तो सैट लगाना मुश्किल था। लेकिन जहाँ तक होता यूसुफ़ की शूटिंग सैट्स पर ही होती थी। सैट थे तो स्टूडियो था। स्टूडियो थे तो मेकअप रूम थे।
– ''जा बे सलिल!... तुझे यूसूफ़ साब बुला रएले...! साल्ले... किस्मत चमकती दिख रएली तेरी... क्या!... उस दिन साले तूने एक्टिंग की और आज हीरो तुझे बुला रएला है! ऐं!... क्या?!''... एक स्पॉट ब्वॉय ने कहा।
– ''मैं आ जाऊँ सर?'' सलिल ने यूसुफ़ के मेकअप रूम का दरवाज़ा खटखटाया।
– ''येस!?''
– ''मैं सर!... सलिल।''
– ''यस!''
– ''सर आपने बुलाया।''

– "तुमसे नारंग साहब ने कुछ बात की?"
नारंग साहब प्रोड्यूसर थे।
– "जी सर। वो बोले अब मैं आप के यहाँ काम करूँ।"
– "तनख़्वाह मैं तुम्हें नारंग से पचास रुपये ज़्यादा दूँगा और रहने के लिए भी मेरे बंगले में नारंग के दफ़्तर से ज़्यादा जगह है...! ... ठीक है!?"
– "ठीक हैं सर!"
– "तो फिर बिस्तर बाँध और कल से आ जा।"
– "सर एक विनती है।"
– "क्या?"
– "सर! नारंग साहब के यहाँ इतने दिन काम किया है अचानक छोड़ते अच्छा नहीं लगेगा। उनको कम-से-कम एक लड़का तो दिला दूँ अपनी जगह। फिर आपके यहाँ आ जाता हूँ।"
– "अबे नारंग प्रोड्यूसर है! प्रोड्यूसर रातों रात कुछ भी पैदा कर सकता है तो क्या वह अपने ऑफ़िस के लिए एक लड़का नहीं ढूँढ सकता!... बेकार की बातों में मत पड़... कल से आ जा। ...बाँद्रा देखा है तूने?"
– "नहीं!"
– "प्रोड्क्शन मैनेजर से कहना वो तुम्हें मेरे घर पहुँचवा देगा। ओ. के.? ... अब जाओ।"
सलिल सिर हिला कर चला गया। किसी की कुछ भी न चली। सलिल को दूसरे दिन यूसुफ़ के घर शिफ़्ट करना पड़ा।
यहाँ आ गए तो एक्टिंग के दरवाजे तो जैसे बन्द हो गए। प्रॉडक्शन ऑफ़िस में तो फिर भी सैट पर जाने को मिलता था। यहाँ क्या?! यहाँ तो शूटिंग में स्टार जाएगा। स्टार का बावर्ची थोड़े ही जाएगा!
हाँ यहाँ ख़ाली समय बहुत मिलता था। हालाँकि यूसुफ़ के घर में उसके भाई, भाभी, माँ वग़ैरह सब थे। बीवी थी मगर वो दुनिया से छुपाकर रखी जाती थी। लेकिन इस घर में अगर इतने लोग थे तो बावर्ची भी कई थे। क़रीब-क़रीब सभी का कोई पर्सनल नौकर था। सलिल का काम बहुत आसान था। सुबह की चाय लेकर यूसुफ़ को जगाना। फिर उसे नाश्ता बनाकर खिलाना। यूसुफ़ वैजिटेरियन था इसलिए सलिल का काम और आसान था। क्योंकि सलिल भी वैजीटेरियन था। नाश्ते के बाद अक्सर यूसुफ़ शूटिंग या रिकॉर्डिंग पर चला जाता था इसलिए उसका दोपहर का ख़ाना ज़्यादातर बाहर ही होता था। रही बात रात के ख़ाने की सो उसका कुछ ठीक नहीं था– वह या तो ज़्यादातर बाहर ही होता था– पार्टियों में, या फिर बाहर से मँगवाया जाता था। इसलिए ले देकर सलिल को दिन में तीन चार बार चाय और एक बार नाश्ता बनाने का काम था। घर में कोई आता नहीं था। सिर्फ़ वो ही आ पाते थे जो बेहद क़रीबी होते थे। पत्रकारों की तो सख़्त मनाही थी। पत्रकार या तो मेकअप रूमों में मिल लेते थे या फिर किसी पार्टी में। इसलिए सलिल के पास ख़ाली

वक़्त भी काफ़ी था और यूसुफ़ लोकेशन पर चला जाए तो आज़ादी भी थी। स्टार का नौकर था, रूतबा भी था। बाक़ी नौकर जलते भी थे और सलिल की शिकायतें भी करते रहते थे। अगर कभी कश्मीर-वश्मीर की शूटिंग निकल आई तब तो महीने-महीने भर सलिल ख़ाली।
इसी ख़ाली समय का सदुपयोग करके सलिल ने ड्राइविंग सीखी। एक बार में नहीं सीख पाया। बीच-बीच में ख़ाली समय मिलने पर सीखी। लेकिन छः महीने में सलिल के पास लाइसेंस आ गया।
एक दूसरी बात जो हुई वो ये कि घूमने-घामने का समय बहुत मिलता था तो उसे शहर का और उसके रास्तों का अंदाजा हो गया। अब जब वो घर में आने वाली फ़िल्मी या ट्रेड पत्रिकाएँ देखता तो उसे मालूम होता, कि जिस स्टूडियो या लोकेशन की ख़बर छपी है वह कहाँ है?
अब लेकिन सलिल को बड़ी शिद्दत से यह बात सताने लगी थी कि वह जिस सपने को पालकर बंबई आया था उसका तो कुछ हो ही नहीं रहा है। यहाँ तो आकर फँस गए। सब रास्ते बन्द हो गए। और इस ओर इसका दिमाग़ बड़ी तेजी से काम करने लगा।
गर्मियों के दिन थे। यूसुफ़ आउटडोर के लिए कश्मीर गया था। यूसुफ़ के भाई / भाभी और बीवी लंदन गए थे और उसकी माँ अपने कमरे में रात की नमाज़ पढ़ने के बाद सोने जा रहीं थीं। तभी बड़ी ज़ोर का हँगामा हुआ। सलिल का किसी दूसरे नौकर के साथ ज़बरदस्त झगड़ा हो गया था। दोनों ऊँची-ऊँची आवाज़ों में एक दूसरे को गालियाँ दे रहे थे। सलिल ने उठाकर दूसरे के ज़ोर से एक सँड़सी दे मारी। दूसरे के माथे से ख़ून आ गया। चिल्लाहट बढ़ गई। वाचमैन अंदर आ गया। माँजी भागकर देखने आईं। माता जी ने कहा, "ये बदतमीज़ी हम बर्दाश्त नहीं करेंगे।" नौकरों ने कहा, "अम्मी इसे निकाल दीजिए, ये हमेशा लड़ता रहता है... आज तो देखिये इसने किस तरह मारा है। ख़ून बन्द ही नहीं हो रहा है।"
वाचमैन ने सलिल की बाँह पकड़कर एक थप्पड़ भी लगाया। एक ने कहा, "पुलिस में रिपोर्ट करेंगे।" माँ जी ने मना कर दिया– 'फ़िल्म स्टार के घर की ख़बर पुलिस तक नहीं जानी चाहिए।' लेकिन माँ जी ने साफ़ कर दिया, "तुम इसी वक़्त अपना सामान लो और जाओ यहाँ से... इसी वक़्त!"
– "मैं इतनी रात को कहाँ जाऊँगा माँ जी?"
– "कहीं भी... लेकिन यहाँ से टलो।"
सलिल बहुत रोया, गिड़गिड़ाया। माँ जी न मानीं। जब सलिल अपने कपड़ों का थैला लेकर वहाँ से निकला तो उसके आँसू थम नहीं रहे थे। लेकिन उसके दिल में लड्डू और इमरतियाँ फूट रहे थे कि चलो छूटे। आख़िर यहाँ से छूटने के लिए ही तो उसने इतनी रात गए इतना हँगामा खड़ा किया था– जो क़ारगर हुआ।
बंगले से बाहर निकल तो लिया लेकिन अब उसकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि जाए कहाँ, सोये कहाँ, रहे कहाँ, करे क्या?

वह बस स्टॉप पर आया। अपना थैला सम्भाले बैंच पर बैठ गया। सोचा यहीं सो जाएगा, सुबह होगी तब देखा जाएगा। इतने में एक बस आई— वर्सोवा जाने वाली। वर्सोवा सुनसान जगह थी। कभी-कभी फ़िल्म की शूटिंग के सिलसिले में वह उस तरफ़ गया है। इक्का-दुक्का पुराने बैरिक नुमा मकान से थे वहाँ। पतली-सी सड़क थी जो ज़्यादा चलती फिरती भी नहीं थी। सलिल बस में चढ़ गया। मुसाफ़िरों के नाम पर दो-चार लोग बैठे थे। उसने सोचा वर्सोवा में कोई उसे जानता भी नहीं होगा, एक नई ज़िन्दगी शुरू करेगा— सिर्फ़ अभिनेता बनने के लिए। इसी बस के सफ़र में उसने एक और फ़ैसला किया और वो ये कि अब नौकरी नहीं करेंगे चाहे भूखों ही क्यों न मरना पड़े। वो अब सिर्फ़ एक्टर बनने की तरफ़ ही कोशिश करेगा।

ट्रैफ़िक ज़्यादा नहीं था। ट्रैफ़िक लाइट्स भी ज़्यादा नहीं थीं। वर्सोवा पहुँचने में ज़्यादा वक़्त नहीं लगा। तब तक सारी दुनिया सो चुकी थी, सड़क सुनसान हो चुकी थी। सात बंगले के मोड़ पर घुमावदार सड़क के पेवमेंट पर जहाँ वह उतरा वहीं उसने अपना थैला रख दिया। बग़ल में पान की दुकान थी जो अब बन्द हो चुकी थी और वह पान वाला दुकान के ठीक नीचे वाले पेवमेंट के अपने हिस्से को धो-धाकर गया था इसलिए जगह बिल्कुल साफ़ थी। घुटनों के बल बैठे पेट पर थैला दबाए सलिल को कब नींद आ गई कहना मुश्किल है।

— "चायलाऽ...! कोण हयरे तू (कौन है तू)... इथे झोपायचा नाहीं (यहाँ सोना नहीं) ... उठ!" पुलिस वाला गश्त पर था।

सलिल ने सर उठाकर आधी बन्द आँखों से उसे देखा। फिर पता नहीं कहाँ से उसमें अक़्ल आ गई। उसने कहा, "मैं सो नहीं रहा हूँ! ये, मेरे चाचा की दुकान है। मैं अभी गाँव से आया उनका इन्तिज़ार कर रहा हूँ।"

— "च्याला...! चल तिकड़े बस (उधर बैठो)... झोपू नका (सो मत)!"

चौथा पहर गुज़र पे था। पौ फ़टने को थी। ज़रा देर में समन्दर के किनारे की चिड़ियों की चों-चों शुरू हो गई। सलिल की नींद कच्ची थी। फिर से कब झपकी आ गई पता नहीं चला।

नींद में सलिल कहाँ न जाने किस लोक में खो गया। उसने देखा कि वह एक बहुत बड़े फ़िल्म सैट पर बहुत बड़े स्टार के बतौर एक्टिंग कर रहा है। हीरोइन उसके गले पड़-पड़ जा रही है और वह शॉट पर शॉट दिये जा रहा है। फिर एक बड़ी-सी गाड़ी उसे उसी की एक फ़िल्म के प्रीमियर पर ले जा रही है। उसकी तस्वीरें खींची जा रही हैं। इन्टर्व्यू लिये जा रहे हैं। थियेटर पर फ़िल्म देखने के लिए भीड़ दीवानी हुई जा रही है। तभी एक लड़की सामने से आई और उसने अपने क़मीज के बटन सलिल के आगे खोल दिये और कहने लगी— 'चलो!... यहाँ से चलो!' फिर वो हाथ पकड़कर चिल्लाई, "चलो... यहाँ से चलो!" और उसी समय सलिल की नींद खुल गई। उसने उनींदी आँखों से देखा कि उसके सामने आधी धोती पहने उघारे बदन मोटा-सा आदमी खड़ा है जो उससे लगातार कह रहा है 'चलो... यहाँ से चलो।'

सलिल को जगा हुआ देखकर उसने कहा, "हुआँ जाय के बैठो... हियाँ से चलौ... हटो... हटो! ... ई तुम्हार बैठे का जाघा नाहीं...!"

सलिल की समझ में उस आदमी की भाषा नहीं आई। उसने फिर वो ही पहले वाला फ़ॉर्मूला लगाया।

— "ये दुकान हमारे चाचा की है... हम उनका इन्तिज़ार कर रहे हैं।"

— "अरे वाह बचवा! हमरे नातेदारौ हुई गए रात भर मा तुम! कहौ, हम ही हैं ई दुकान के मालिक! हमरे भतीजे हो तुम?! कहो?!"

अब सलिल की समझ में कुछ नहीं आया। वह उठकर खड़ा हो गया। फिर कुछ इस तरह अनमना होकर चलने को हुआ कि पान वाले को कुछ दया-सी आ गई।

— "कहाँ से आए हो?"

— "ललितपुर से।"

— "ऊ कहाँ पड़ी?"

— "झाँसी के पहले।"

— "हाँ ऽ...! अपनी तरप के हौ! कैसे आए रहे बचवा... बंबई मा का करी?"

सलिल की पहले तो सिसकियाँ बँधीं, फिर उसका रोना फूट पड़ा। कुछ थकान थी कुछ ये था कि किसी ने इतने दिनों बाद अपनेपन से बात की थी। उसने अपनी सारी कहानी पान वाले को बता दी। पान वाला अपनी दुकान के बर्तन और पटिया साफ़ करता जाता और सुनता जाता।

— "तो अब बताइये हम क्या करते?"

— "घर से भाग के तुम अच्छा नहीं किये। हुआँ के दरवाजे तो बन्द हुई गए न! लौट के कौन मुँह से जइहौ!? और रख तो हमहूँ तोहे नहीं सकते...! कहीं ठिकाना ढूँढों और जो करना है सो करो!"

और फिर पान वाले ने दस रुपये निकाल कर सलिल को दिए।

— "ये लेओ... हमसे जो बन पड़ी हम करी... लेकिन अब और कौनो उम्मीद न रखौ। अब जाओ। हमरे धँधे का टाईम हुई रहा है।"

एक बार तो सलिल को सूझा कि जाकर वापस नारंग साहब के ऑफ़िस में काम पर लग जाए। लेकिन फिर दो ख़्याल आए— एक कि नारंग उसे यूसुफ़ की मर्ज़ी के बग़ैर रखेगा नहीं और दूसरे कि अभी-अभी तो उसने फ़ैसला किया था कि अब कहीं नौकरी नहीं करेगा, सिर्फ़ एक्टिंग के लिए कोशिश करेगा।

— "कहीं सामान रखने की जगह ही मिल जाती तो...!" सलिल ने सकुचाकर कहा।

— "अब हम तो भाई जगह-उगह यहाँ जानते नहीं है।" पान वाले ने सुपारी काटते हुए कहा। फिर जैसे रस्मन पूछा, "इतना ही है कि और भी है सामान?"

— "इतना ही है।" सलिल को उम्मीद जागी। लेकिन पान वाला चुप हो गया और जब उसकी चुप्पी बहुत देर तक रही और सलिल को लगा कि बस अब बातचीत की कड़ी

ख़त्म हो चुकी है तो वह आहिस्ता-आहिस्ता इधर-उधर देखता हुआ दिशाहीन तौर से चलने को हुआ।

– "अरे बचवा!" पान वाले ने पुकारते हुए कहा।

सलिल फ़ौरन वापस आ गया।

– "देखो... उहाँ लगा है नल...ऐं! ...सो जब तक तोहरे रहे का इन्तजाम न हुई जाए ... तू ऐसा कर कि रात को हियाँ नीचे चद्दर बिछाय के सो जा, हमरे दुकान बन्द करी के बाद। रात के ग्यारह के बाद। ... और सुबह में नहा-धुई के हमार दुकान खोलै के पहले इहाँ से चला जा...! जब तक कोई तेरा इन्तजाम नहीं होता... ठीक है?!"

सलिल की आँखें भीग गईं। चेहरा नीचे हो गया। उँगलियाँ उँगलियों से खेलने लगीं। पैर का अँगूठा जमीन रगड़ने लगा और थैला बाहों में और ज़्यादा जकड़ गया। फिर उसे ख़्याल आया– "पुलिस वाला?"

– "उससे हम कह देंगे हमारा आदमी है। लेकिन एक बात है– ई सब के लिए पैसा तो तोहरे पास है नहीं, हमरी दुकान की साफ़-सफ़ाई कर देबो। सुबह जाय के पहले ई सब धुई-धा के जाइयो। हम आएँ तो सब ठीक-ठाक मिलै। ... ठीक!... मँजूर?"

– "मँजूर!... का का करना है सो समझा दियो हमें।"

– "ठीक बा...! लो ए देख लेयो...!" फिर पान वाले ने सामान दिखाकर सब समझा दिया।

वो दिन तो कट गया। पान वाले ने रात को सोने का बन्दोबस्त कर दिया। दिन में खाना भी खा लिया क्योंकि पान वाले ने दस रुपये भी दिये थे। दूसरे दिन होटल वाले शेट्टी ने बिल चुकाने के लिए सलिल को रेज़गारी गिनते देखा। फिर भी चवन्नी कम पड़ी। 'गल्ले' पर बैठे शेट्टी ने अपनी सोने की चेन वाली घड़ी को बाँह ऊपर हवा में झुलाकर पोज़ीशन पर लाते हुए कहा, "कम पड़ता है?"

– "चवन्नी!" सलिल ने डरे-डरे से कहा।

– "करता क्या है?"

– "कुछ नहीं।"

– "तुम भी साला एक्टिंग करने को आएला है क्या? ... अक्खा मुंबई में या तो शेट्टी आता है या एक्टिंग करने वाला आता है। ... चल जा... कल देना।"

सलिल ने सर हिलाया, शेट्टी की सौंफ़ फ़ाँकी और बाहर चला आया, लेकिन उसकी समझ में यह नहीं आया कि वो कल खाना कहाँ से खाएगा! आज की शेट्टी की उधार की चवन्नी कहाँ से देगा!

होटल से निकलते हुए उसने आसमान में इधर-उधर आए बादलों को देखा। बारिश बस आई ही समझो! वह बम्बई में दो बारिशें देख चुका था। बारिश के पहले ऐसा ही मौसम होता था। लेकिन तब तो वो नारंग के यहाँ था। किसी महफ़ूज़ छत के नीचे। इसलिए कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। इस बार क्या होगा! और बंबई की बारिश का तो कहना ही क्या– बेहिसाब, बेठिकाना, वक़्त-बेवक़्त!

– "सलिल!... ओए सलिल!" सलिल को सड़क के उस पार से कोई पुकारता हुआ लगा। "अबे... इधर देख... इधर...।

रज़ाक था! टैक्सी का एक दरवाज़ा खोले, एक पाँव बाहर निकाल कर खड़ा होकर वह सलिल को पुकार रहा था। सड़क के उस पार। सामने। सलिल ने देखा।

– "तू इधर!" रज़ाक ने पूछा।

– "तू इधर किधर?" सलिल बोला।

– "मैं साला अभी प्रोड्क्शन मैनेजर बन गएला हूँ। चल... आ जा गाड़ी में बैठ...!"

– "नहीं नहीं... मैं किदर जाएगा... नहीं।

– "तू तो एक्टिंग कियेला है न!?... एक छोटा-सा रोल करेगा?... खड़ा कर देता हूँ साला तूझको... दोस्ती किस दिन काम आएगी?"

– "रोल क्या है?"

– "अबे रोल को मार गोली... कल नौ बजे फ़िल्मिस्तान आ जा स्टेज नम्बर दो पे। डायरेक्टर से अपना अच्छा है। वो बोला है कि हीरो के दोस्त के लिए नया लड़का ढूँढने का। मैं तुझे आगे कर देता हूँ फिर तू जाने तेरी क़िस्मत। ठीक है!?"

– "कल नौ बजे फ़िल्मिस्तान! आएगा। ज़रूर आएगा।

– "फ़िल्मिस्तान स्टूडियो देखा है न... गोरेगाँव वाला।"

– "देखा है न... फ़िल्मिस्तान देखा है। थैंक्यू।"

– "थैंक्यू क्या बे... रोल मिले तो एक-एक पैग मारेंगे...! चल चलता हूँ।"

ज़िन्दगी इतनी आसान होगी यह कहाँ सोचा था।

'कल' तक वक़्त काटना मुश्किल हो गया। सुबह होती ही न थी। आज रात कल का ठिकाना हो गया।

– "रज़ाक? ... कौन रज़ाक?" फ़िल्मिस्तान के दरबान ने दरवाज़ा बन्द करते हुए कहा।

– "वो प्रोड्क्शन मैनेजर है... स्टेज नं. दो पर बुलाया है मुझे।"

– "कभी बुलाया है?"

– "नौ बजे।"

– "तो नौ बजना देओ। अभी आधा घंटा है। जाओ घूम के आओ किदर। इधर खड़ा मत रहो।"

सलिल आज उतावली में जल्दी उठा जल्दी तैयार हुआ।

बग़ल वाले प्रेस वाले से चार घंटे के लिए एक शर्ट माँग कर लाया और कहीं देर न हो जाए के चक्कर में जल्दी-जल्दी फ़िल्मिस्तान पहुँचा। घड़ी थी नहीं इसलिए समय का अन्दाज़ा नहीं रहा। आधा घंटा पहले पहुँच गया। अब जब गोरखा स्टूडियो के अन्दर नहीं जाने दे रहा था तो सोचने लगा कि क्या करे। जाना कहीं चाहता नहीं था... और जाए भी कहाँ! कहीं धूल-मिट्टी से क़मीस गन्दी हो गई तो! क्या इम्प्रैशन पड़ेगा डायरेक्टर पर!

इतने में अचानक एक बड़ी-सी कार स्टूडियो के दरवाज़े पर आ कर रूकी। गोरखे ने स्टूडियो का गेट खोला, सलाम किया और गाड़ी को अन्दर जाने दिया। उस गाड़ी में पीछे बैठे शख़्स ने खिड़की से सलिल की तरफ़ देखा, फिर मुड़कर एक बार फिर देखा, फिर गाड़ी अन्दर चली गई। सलिल को डर लगा कि कहीं ऐसा तो नहीं कि यह आदमी यूसुफ़ का हो और यूसुफ़ को जाकर सलिल के स्टूडियो में आने की ख़बर दे। यूसुफ़ तो उससे ख़ार खाए बैठा होगा। हीरो के दोस्त का तो क्या अगर एक्स्ट्रा का रोल भी मिलता होगा तो भी कटवा देगा। ख़ैर! उसने सोचा, क़िस्मत भी कोई चीज़ है... देखा जाएगा।

– "ऐ... इधर आओ!"... स्टूडियो गेट के अन्दर से किसी ने सलिल की तरफ़ देख कर पुकारा।

– "मैं?" सलिल ने इशारे से पूछा।

– "हाँ, तुम! इधर आओ!"

ज़रूर रज़ाक का आदमी होगा– सलिल ने सोचा। वह अन्दर चला गया। लेकिन स्टेज टू की जगह वो सलिल को ले चला किसी ऑफ़िस की ओर। फिर एक प्रोड्क्शन के दफ़्तर में ले जाकर बोला– "इधर बैठो। साहब मिलेगा।"

आधा घंटा गुज़र गया। जब किसी ने नहीं बुलाया तो सलिल परेशान हो गया। स्टेज टू पर नौ बजे पहुँचना था तो वहाँ के लिए जल्दी आए थे सो अब लेट हो गए। यहाँ पता नहीं कहाँ आ गए, कौन मिलना चाहता है।

– "साहब बुलाता है।"

सहमता, कन्फ़्यूज़्ड सलिल एक बड़े से केबिन में दाख़िल हुआ। देखा तो वही आदमी था जो स्टूडियो के दरवाजे पर गाड़ी से अन्दर आते हुए मुड़-मुड़कर उसकी तरफ़ देख रहा था।

– "क्या करते हो?" उस आदमी ने अपनी गहरी-भारी आवाज़ में सपाट-सा पूछा।

– "जी कुछ नहीं।"

– "तो स्टूडियो के दरवाज़े पर क्या कर रहे थे?"

अब सलिल की सिट्टी-पिट्टी गुम। वो डर गया।

– "वो... साहेब... किसी ने बुलाया था मुझे।"

– "किसने?"

– "रज़ाक करके है... मैं जानता हूँ उनको... वो... वो... प्रॉडक्शन देखते हैं।"

– "हूँ ऽ...!"

– "गल्ती हो गई सर... माफ़ कर दीजिए... मैं... मैं...!"

– "मैं... मैं... क्या?"

– "आगे से ऐसे नहीं खड़े रहूँगा सर... वो क्या है सर कि मैं ज़रा जल्दी आ गया इसलिए गोरखा मुझे अन्दर नहीं आने दे रहा था... इसलिए मैं वहीं खड़ा वेट कर रहा था। सॉरी सर!" सलिल ने नदामत में सर झुका लिया।

– "हूँ ऽ ...।"

– "........!"

एक अजीब-सी तकलीफ़ देह ख़ामोशी रही। फिर सड़ाक से एक सवाल आया–

– "एक्टिंग करोगे?"

– "जी?" सलिल का सर झटके से ऊपर उठा और आँखों में अविश्वास लिए मुँह से अनायास ही सवालिया 'जी' निकल गया।

– "एक्टिंग करोगे?" सवाल फिर आया।

जी बोलना चाहते हुए भी बोल नहीं फूटा। सलिल का मुँह खुला का खुला रह गया।

– "अरे भूरेलाल!" साहब ने आवाज़ लगाई। एक आदमी केबिन में दाख़िल हुआ। साहब ने कहा–

"देखो... कैमरामैन साहब से कहो इस लड़के का भी स्क्रीन टैस्ट ले लें।" फिर साहब ने सलिल की तरफ़ देखकर कहा, "जाओ, तुम इसके साथ जाओ।"

भूरेलाल के पीछे-पीछे सकते में आया हुआ, बग़ैर थैंक्यू किये सलिल केबिन के बाहर चल दिया। खाल, मन, दिमाग़, चेतना सब सुन्न हो चुके थे। ज़ीना उतरते साथ सीढ़ियों के नीचे ही कैमरा लगा था। एक आदमी ने कुछ लाइने पकड़ा दीं। दूसरे ने चेहरे पर पावडर पफ़ कर दिया। कैमरामैन बोला, "जब लाइनें याद कर लो तो बता देना।"

एक आदमी फ़ाइल लिए कुछ देर तक यह समझाता रहा कि रोल क्या है, सिचुएशन क्या है, करना क्या है, वग़ैरह... वग़ैरह...!

सलिल को कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि हो क्या रहा है? सपने और हक़ीक़त का फ़र्क़ मिट चुका था। सीना विह्ल हो रहा था। आँख बार-बार भीग रही थी। ऐसा लग रहा था कि जिसके लिए ललितपुर से भागे वह मँज़िल अपने आप चलकर उसके पास आ गई है।

– "चल भाई जल्दी कर यार!" कैमरामैन चीख़ा, "देखता नहीं बूँदा-दाँदी शुरू हो गई है। बारिश बस आना चाहती है।... जल्दी कर।"

– "इस साल पानी जल्दी बरसेगा लगता है।" किसी ने कहा।

– "स्क्रीन टैस्ट तो हो जाने दे यार फिर अपनी बद-दुआ देना। बारिश में साला आउटडोर वैसे ही बन्द हो जाता है। क्यों पेट पे लात मारता है।"

– "स्टूडियो तो चालू रहता है!... तुम साले प्रॉडक्शन वाले तो दोनों तरफ़ से मज़े में हो। एक रुपये की टैक्सी के दस रुपये लगाते हो– 'ट्रैफ़िक में फँस गया था'... हुँह!"

– "लाइनें याद कर लीं?" कैमरामैन ने पूछा।

– "जी सर।"

– "चलो लेते हैं।"

कैमरा रोल हुआ। वही सलिल जिसने सालहा साल आईने के सामने तमाम प्रकार की एक्टिंग की थी आज सकपकाया और सहमा-सा था। अपने आप पर उसका विश्वास

खो गया था! पसीना और पेशाब दोनों छूटने लगे। किसी तरह डॉयलाग आधा बोला गया, कुछ बुदबुदाया गया, कुछ याद ही नहीं रहा।

— "कट!... चल, जा भाई...! ...हीरो बनेंगे! हुँह!"

टैस्ट देकर सलिल जब वापस ऑफ़िस में ऊपर जाने लगा तो सीढ़ियों पर एक चपरासी नुमा लड़के ने रोक दिया— "क्या?"

— "साहब से मिलने!"

— "साहब बिज़ी है।"

— "तो ये टैस्ट?"

— "ठीक लगेगा तो हम कॉन्टेक्ट करेंगे। अपना एड्रेस छोड़ दो।"

— "एड्रेस?!"

ऐड्रेस— वर्सोवा के पान वाले की दुकान के नीचे की सड़क! शाबाश सलिल! क्या क़िस्मत पाई है! वाह! सलिल ने मन-ही-मन अपने ही ऊपर तन्ज़ किया। तब ही सलिल की बुद्धि न जाने कहाँ से जागी, बोला— "मैं खुद आ जाऊँगा... बोलिए कब आऊँ?"

— "परसों, दोपहर में।"

— "ठीक है।"

और तब ही शुरू हो गई मौसम की पहली बारिश। तेज बौछार! जिसने गर्मी से तपती धरती को गीला भी कर दिया और ठंडा भी।

जब तक सलिल दुकान पर पहुँचा रात हो चुकी थी। धोबी अपनी क़मीस के लिए तीन बार आकर लौट चुका था और समन्दर की हाई टाईड अपने पूरे जोश पर थी। हालाँकि उस दिन गीले पेवमेंट पर चद्दर डाल कर लेटना मुमकिन नहीं था लेकिन सर पर टारपोलिन डालकर उकड़ूँ बैठे भी सलिल को जिस सुकून और शाँति का अनुभव हुआ उसका इज़हार वह शब्दों से नहीं आँसुओं से करता रहा। पता नहीं क्यों एक अलग प्रकार का चैन, एक हल्कापन उसके तन-मन पर तारी हो गया था। जैसे किसी बड़ी भारी जीत के बाद इत्मीनान और थकान दोनों उभरे हों। आज आँसू तो थे लेकिन किसी ग़म, तकलीफ़, दर्द या किसी नाकामी के नहीं। आज सलिल को अपने पिता की झिड़कियाँ और माँ के दुलार बहुत याद आए। और तब ये थकान के आँसू अपने प्रियजनों से विछोह के आँसू बन गए।

चारों तरफ़ सन्नाटा हो चुका था। दुकान के पश्चिम में समुन्दर की ओर एक बिल्डिंग बनने लगी थी सो उसके मजदूरों के बच्चे कभी कभार रिरिया लेते थे, बस। बाक़ी सिर्फ़ सुनाई देती थी हाई टाईड की तेज लहरों की दहाड़ती आवाज़ें। इस बीच सलिल को कब नींद लग गई पता नहीं चला।

लेकिन आज इतने दिनों बाद वो इत्मीनान की नींद सोया। बेख़बर! चैन से। और उस गहरी नींद में वो एक बहुत ऊँची चट्टान से गिरा— सीधा खाई में। गिरता गया ... गिरता गया... फिर अचानक एक तरफ़ निकली हुई पेड़ की एक टहनी में उसकी खुले बटन वाली क़मीस का कॉलर अटक गया। पहले तो वह उस पर झूलता रहा फिर

आहिस्ता-आहिस्ता उसने उस टहनी को पकड़ कर ज़मीन पकड़ने की कोशिश की। फिर जाने कब वह एकदम सपाटे से पहाड़ी की ऊपरी चोटी पर पहुँच गया।। उसकी फ़टी क़मीस एक रंगीन कॉस्ट्यूम में बदल गई। माहौल फ़िल्म की शूटिंग में बदल गया। उसके बग़ल में एक हीरोइन आ गई और वो उसके साथ गाना गाने लगा— नाच-नाच कर, दोनों एक-दूसरे से क़दम मिला-मिला कर। शॉट ओ.के. होने के बाद डायरेक्टर ज़ोर से चिल्लाया, "वैरी गुड! कट! कट!"

सपना टूटा तो कुछ इस तरह कि सलिल ने पाया कि पान वाला उसे 'उठ... उठ ...।' करके जगा रहा है।

— "नौ बज गएल बिटवा...! उठौ!"

सलिल ने आँख मलते हुए पान वाले की तरफ़ देखा। पान वाला बोले जा रहा था, "काल इहाँ तोहरे लाने धोबी आया रहा... और कौन-कौन तो आया रहा पूछन। अब भैया अपना बन्दोबस्त कर लेओ। हम ई सब न सम्भाल पाई। समझे कि ना...!?"

— "चाचा! तुम हमारी मदद किये हो। एक बार हमको स्टार बन जाने देओ हम तुम्हारे लिए देखो क्या-क्या करते हैं। बस एक बार चाँस लग भर जाए।"

— "अरे जा! चाँस लग जाए!" पान वाला तुनक गया, "फ़िल्म वाले तमाम देखे हमने और रोज़ तो देखत हैं। सब के सब फटीचर। न उनकी आमदनी का ठिकाना न उनके बोल का ठिकाना! रोज तो आते हैं इहाँ पान खाने। ...चलो! तुम तो रात से अपना बन्दोबस्त कर लेओ भाई... समझे न!"

— "आज ही से?"

— "चलो कल से सही लेकिन कर लेओ... यह सब यहाँ नहीं चलेगा।"

4

सलिल उस दिन बहुत बेचैन रहा। एक तो इस उधेड़बुन में कि कल से ही सही लेकिन अब वो सोया कहाँ करेगा। दूसरे एक अलग क़िस्म का कौतूहल अन्दर था कि जो टैस्ट दिया है आख़िर उसका नतीजा क्या होगा! रोल मिलेगा कि नहीं। इस वक़्त हीरो क्या हीरो के भाई, बाप, दोस्त किसी का भी रोल मिले– सब चलेगा।

चलते-चलते अँधेरी स्टेशन की तरफ़ निकल आया। नवरंग सिनेमा के आगे आते-आते बायीं तरफ़ एक मंदिर पड़ता था। उसने सोचा आज प्रार्थना कर ली जाए। हे शंकर जी, हे हनुमान जी, हे गणेश जी, हे अम्बा माँ... हमारी सुनो! हम बम्बई किसलिए आए और क्या हो गए!

– "चार आने!" फूल वाले ने पुड़िया थमाते हुए कहा।

– "चार आने?... इतना सा के लिए?"

– "तो कितना?!"

– "ठीक है, रहने दो।"

अब फूल वाले को कौन बताए कि चार आने होते तो शेट्टी को न दे देते! सलिल मंदिर में गया। लेकिन अन्दर जाने के बाद भी नज़र भगवान की मूर्ति पर कम और अपनी बाहर उतारी हुई चप्पल पर ज़्यादा थी। चप्पल चली गई तो दूसरी कहाँ से लाएँगे! फिर उसे देखी हुई फ़िल्मों के सीन याद आने लगे। वो देखता रहा कि शायद अपनी प्रार्थना के प्रसाद में मूर्ति से अभी एक फूल गिरेगा और अपनी सारी मुरादें पूरी हो जाएँगी। कोई बीस मिनट तक टकटकी लगाए वो मूर्तियों की तरफ़ देखता रहा लेकिन कोई फूल न गिरा। फूल भले ही न गिरा हो लेकिन जब वह मत्था नवा कर मंदिर से निकलने लगा तो दीवार से ज़रूर उसका सर 'थड़ाक' से टकराया और वो तक़रीबन चकरा गया।

सलिल बाहर आया। चप्पल बरक़रार थी। सड़क पर बेवजह आवारा-सा वह अंधेरी स्टेशन की ओर मुड़ लिया। इतने में आधी धोती पहने एक हाथ में जल लिए फुर्ती से एक शख़्स पीछे से आया और उसे न जाने क्या समझ कर उसकी हथेली पर एक रुपये का सिक्का रखकर सपाट से निकल गया। आगे भी उसने दो चार भिखारियों को कुछ पैसे-रुपये दिये। सलिल जब तक कुछ कहता वो आदमी चला जा चुका था। सलिल को बुरा ज़रूर लगा कि अब उसे भिखारी समझा जा रहा है। लेकिन हाथ में एक रुपया आ

गया था! आगे आकर उसने एक वड़ा और एक चाय ली। यही आज का नाश्ता और दिन का खाना था। रात की रात में देखी जाएगी। मिला तो ठीक नहीं तो कम से कम आज यह तो खाया!

चाय पीते हुए इधर-उधर देखकर उसने तक़रीबन तय कर लिया कि अगर पान वाले ने सचमुच वहाँ सोने से मना कर दिया तो कल से वह प्लेटफ़ॉर्म पर आकर सोयेगा। यहाँ बारिश से भीगने का सवाल भी नहीं उठेगा। फिर ये कोई नई बात थोड़े ही है। यही तो वह करता था जब बम्बई उतरा था।

जब सलिल ललितपुर से आकर वी.टी. उतरा था तब उसकी जेब कट चुकी थी, शहर का कुछ पता नहीं था, वापसी का सवाल नहीं था और यहाँ के रास्ते बिल्कुल बन्द थे। वो तो शुक्र है उसे एक रेलवे वाला बाबू मिल गया था जो उसकी बातों से पसीज गया था। उस बाबू ने सलिल को ले जाकर केटरिंग वाली कैन्टीन में साफ़-सफ़ाई के लिए रोज़न्दारी पर लगवा दिया। सलिल के किसी ख़ानदान वाले ने भी ऐसा काम नहीं किया था लेकिन मजबूरी थी, उसे हामी भरनी पड़ी। फिर वहीं उसने खाना बनाना सीखा। बावर्ची जब तम्बाकू मलने चला जाए तो यह काम करे।

इस तरह सलिल ने सफ़ाई करना, खाना बनाना सीखा। फिर एक दिन स्टेशन पर ख़बर आई कि एक फ़िल्म यूनिट जा रही है तो वह दौड़कर आया और इन लोगों की भरपूर मदद करने लगा। फिर उसने इन लोगों से काम माँगा। प्रोडक्शन वाले ने टेलिफ़ोन नम्बर दिया और कहा, पन्द्रह दिन बाद 'कॉन्टेक्ट' करे। तब तक ये लोग लोकेशन शूटिंग से वापस आ जाएँगे।

पन्द्रह दिन बाद सलिल ने फ़ोन किया। प्रोडक्शन मैनेजर ने अपने प्रोडक्शन कन्ट्रोलर से मिलवाया। कन्ट्रोलर ने नारंग साहब से। नारंग साहब ने कहा, "ठीक लगे तो रख लो।" इस तरह सलिल ऑफ़िस में ख़ाना बनाने, साफ़-सफ़ाई करने के लिए रख लिया गया था।

प्लेटफ़ॉर्म पर सोने की बात से उसके दिमाग़ में न जाने कितने दृश्य एक साथ छा गए। कैसे-कैसे हादसे और कैसे-कैसे वाक़्ये उसने उन दिनों स्टेशनों पर देखे। आँख मिचौलियाँ, तकरार-मनौअल, लड़ाइयाँ, इश्क़, मारपीट, ख़ून-ख़राबे, लोगों का रेल से कटकर मर जाना और लाशों का धूप-धूल में पड़े सड़ते रहना।

यों तो उसने कई स्टेशनों पर रात गुज़ारी है लेकिन उसकी सबसे अजीब और दहला देने वाली याद है वी.टी. स्टेशन की। रात को क़रीब बारह के आसपास जब वह सोया तब बग़ल में एक तनदुरुस्त आदमी भी आकर लेट गया। फिर जब तीन बजे के आसपास उसकी नींद टूटी और उसने करवट बदली तो देखा कि वो आदमी जो बग़ल में आ कर लेट गया था एक अजीब से अंदाज में अकड़ा-सा पड़ा है, उसकी आँखे खुली हुई हैं, मुँह खुला हुआ है, उसमें कोई हरकत नहीं है और उसका एक हाथ अजीब-सा उल्टा होकर सलिल के ऊपर पड़ा है। सलिल ने उसका हाथ हटाने की कोशिश की तो हाथ फिर से वापस आ गया जैसे कि उसमें अपनी कोई जान ही न हो। उसने एक बार और हाथ हटाने

की कोशिश की। फिर वो ही। सलिल की नींद हवा हो गई। वह उठ बैठा। पास वाले की भी नींद टूट गई।

— "मर गया साला।" पास वाले ने कहा।

सलिल के लिए यह पहली मौत थी और वह भी इस तरह। वह एकदम डर गया और वहाँ से फ़ौरन भाग जाने को हुआ। उसने अपनी चद्दर उठाई और वहाँ से उठकर दूर कोने में चला गया। क्या पता पुलिस उसी से न सवाल पूछने लगे!

बहरहाल! अब तो इतना कुछ देखने के बाद खाल मोटी हो गई है। कहीं भी कुछ भी हो सकता है और किसी के साथ हो सकता है। अजीब दुनिया है, वह कभी-कभी सोचता था, जो बनाता है वही मारता भी है और मारने से पहले सताता भी है। तो आदमी और हलाल के बकरे मे फर्क़ क्या है!? कभी प्यार कभी दुलार, कभी तकलीफ़ कभी दुःख और आख़िर में वही— मौत!

चवन्नी की चाय की आख़िरी चुस्की लेकर जब सलिल ने गिलास बाँकड़े वाले को वापस दिया तो उसे लगा कोई उसकी पीठ पर थपकी-सी दे रहा है।

— "साले! तुझे बुलाया था न!"

सलिल ने मुड़कर देखा। रज़ाक था।

— "अरे रज़ाक तू!"

— "तूझे फ़िल्मिस्तान बुलाया साले... रोल की बावत, तू आया ही नहीं!"

— "मैं आया था!... मुझे गेट वाले ने घुसने नहीं दिया।"

फिर सलिल ने रज़ाक को पूरी दास्तान सुना डाली। किस तरह वह जल्दी पहुँच गया था, किस तरह किसी प्रोड्यूसर ने उसे अन्दर बुलाया और उसका स्क्रीन टैस्ट करवाया— सब बता डाला।

— "तो चल... मैं तो फ़िल्मिस्तान ही जा रएला है।"

— "मैं नहीं जा सकता...!"

— "क्यों?"

— "मेरे कपड़े देख... प्रोड्यूसर क्या सोचेगा! और क्योंकि उस दिन मैंने क़मीस देर से वापस की इसलिए धोबी अब मुझे क़मीस देगा नहीं।"

— "अबे चल...!" रज़ाक ने मज़ाक़ में सलिल की पीठ पर धौल लगाई, "देख बेटे फ़िल्म का धंधा झूठ का धंधा है। क्या...?! जो परदे पर दिखता है वह सच है क्या? नहीं न! तो झूठ के धंधे में कुछ करना है तब झूठ ही बोलना पड़ेगा।"

— "याने?"

— "याने... मेरे साथ चल! प्रोड्यूसर के ऑफ़िस में जाना और शान से घुसना। कोई अगर बोले कि कितना गन्दा दिख रहा है तू तो कहना, "मैं शूटिंग कर रहा हूँ। शॉट में टाईम है इसलिए पूछने को आया... मैं कॉस्ट्यूम में हूँ।... समझा क्या?!"

दोनों हँसे, दोनों ने ताली दी और सलिल ने रज़ाक की अक़्ल की तारीफ़ की। सफ़र फिर से शुरू हो गया। वापस उसी रास्ते पर। उसी मंदिर से होकर।

गुज़रते हुए मंदिर के नुक्कड़ पर सलिल ने भगवान के मौन हाथ जोड़े। शुक्रिया अदा किया कि भले ही किसी फ़िल्मी सीन की तरह मूर्ति से कोई फूल न गिरा हो लेकिन मंदिर से निकलने के बाद जो-जो कुछ भी हुआ वह भगवान की कृपा से कम नहीं था। आख़िर रज़ाक क्या था? वह भी भगवान की बनाई जान-पहचान थी। वह भी मामूली-सी जान-पहचान जो नारंग साहब के यहाँ हुई थी। रज़ाक स्पॉट ब्यॉय था। शूटिंग में देहाड़ी पर बुलाया जाता था। अब तो ख़ैर एक प्रोड्क्शन में वह असिस्टेंट प्रोडक्शन मैनेजर है। लेकिन जान-पहचान तो तमाम से होती है, दोस्ती किसी-किसी से ही होती है और दोस्तों में भी कोई-कोई ही होता है जो दोस्ती निभाता है। रज़ाक दोस्त ही नहीं बना, उसने बराबर दोस्ती निभाई और अब भी निभा रहा था। अब ये भी तो भगवान की किसी कृपा से कम नहीं था न!

ललितपुर में जब सलिल के बम्बई वाली गाड़ी पकड़ने की ख़बर लगी थी तो पहले तो घर वाले चीख़े-चिल्लाये— "जाने दो साले को।" फिर ये हुआ कि "जब भूखों मरेगा तो कहाँ जाएगा। वापस आ जाएगा।" लेकिन जब हफ़्ता भर, दो हफ़्ता... एक महीना गुज़र गया और सलिल की कोई ख़बर न लगी तब घर वालों ने पुलिस में उसके खो जाने की रपट लिखवाई। बंबई में कोई जान-पहचान थी नहीं और अगर ढूँढने बम्बई जाते भी तो इतना बड़ा शहर— कहाँ-कहाँ ढूँढते?!

इसलिए मामला भगवान पर छोड़ कर बैठ जाया गया। किसी ने कहा एक 'नेशनल' अख़बार में 'गुमशुदा' में फ़ोटो छपवा दो सो उस इलाके में 'इंडियन एक्सप्रेस' बड़ा चलता था। उसमें एक अख़बार वाले से कहकर बम्बई एडीशन में 'गुमशुदा' में सलिल का फ़ोटो भी छपवा दिया गया। लेकिन किसी ने यह नहीं सोचा कि बम्बई के अख़बारों में रोज़ाना ऐसे कितने ही फ़ोटो छपते हैं और कौन देखता है इन्हें! सिर्फ़ वो रिटायर्ड लोग जिनके पास सिवाए हर्फ़-ब-हर्फ़ अख़बार पढ़ने के कोई और काम नहीं है।

हाँ, सलिल के पिता, श्यामा प्रसाद का दूर दराज़ का एक भतीजा ज़रूर बंबई के पास थाने में रहता था। याने सलिल का— दूर दराज़ का सही— हुआ तो चचेरा भाई ही। लेकिन कभी वो लोग संपर्क में रहे नहीं थे इसलिए चेहरा पहचानना तो दूर की बात ख़तो-किताबत का सिलसिला भी नहीं था। हालाँकि श्यामा प्रसाद तय नहीं कर पा रहे थे लेकिन मन उनका यही बन रहा था कि अपने उस भतीजे का पता लेकर उसके पास जाएँ और बंबई में सलिल को जाकर ढूँढे। इरादा उनका बनता और फिर इस ख़्याल से कि इतने बड़े शहर में कहाँ ढूँढेंगे! खुद ही मायूस होकर रह जाते।

— "टिकट बोला।" कन्डक्टर की आवाज़ आई।

— "दो फ़िल्मिस्तान।" रज़ाक ने कन्डक्टर की तरफ़ एक रुपया बढ़ा दिया। उसने दो टिकट और बाकी पैसे दे दिये।

— "मेरे पास पैसे नहीं हैं।" सलिल ने शर्माते हुए कहा।

— "छोड़ बे... बस से जाऊँगा, टैक्सी क्लेम करूँगा... प्रॉडक्शन का आदमी हूँ बॉस!" फिर उसने अपनी जेब पे हथेली मारते हुए कहा, "पैसे की क्या कमी है!"

— "मुझे भी प्रोडक्शन की नौकरी दिला दे यार।"

— "तू डिसाइड कर तुझे क्या करना है... एक्टिंग करनी है या प्रोडक्शन करना है।"

— "कुछ भी यार... पैसा तो मिलेना न!"

— "पैसा तो क़िस्मत से मिलेगा बेटा! एक्टर भी भूखे मरते हैं और प्रॉडक्शन वाले भी कार में घूमते हैं... क्या!"

डबल डैकर बस घोड़ बन्दर रोड से होती हुई फ़िल्मिस्तान की तरफ़ बढ़ रही थी। ऊपर के डैक पर बैठे दोनों दोस्त इधर-उधर की बातें कर रहे थे। बारिश का मौसम अपनी जवानी पर था। बाहर बादल एकदम अंधेरा कर दे रहे थे। फिर अचानक बड़ी-बड़ी बूँदें आ गईं और बस की खिड़कियों के शीशे बन्द करने पड़े।

— "ले!... अब क्या होगा?!" सलिल ने परेशानी से कहा।

— "अबे और अच्छा है... भीग जाएगा न तो साले नेचुरल लगेगा।" रज़ाक ने न जाने क्या सोचकर यह कहा। या शायद बग़ैर कुछ सोचे समझे ही। सलिल की भी समझ में कुछ नहीं आया। जब स्टॉप आया तो दोनों बस से उतर कर स्टूडियो के अन्दर भागने को हुए। छाते में ढके दरबान ने रोका। रज़ाक को खैर अब तक ज़रा ज़रा लोग वहाँ पहचानने लगे थे। सलिल साथ में देखा तो दोनों को जाने दिया।

सुबह के ग्यारह के क़रीब बजे थे और लग ऐसा रहा था कि शाम के सात तो कम से कम बज ही गए होंगे।

— "तू ऑफ़िस में जा के आता है क्या? स्टेज टू पे आजा।"

— "ऐसे में कौन जाएगा। भीगा तो हूँ।"

— "तो फिर चल आ जा मेरे साथ।"

दोनों स्टेज टू के क्रू के पास हो लिए। प्रोडक्शन मैनेजर ने हाँक लगाई, "ये किस चम्बू को ले आया बे!"

— "बड़े काम का है बॉस!" रज़ाक ने वहीं से जवाब दिया।

— "स्टार है क्या?! हँ हँ हँ हँ...! यहाँ तो साला स्टार ही काम का होता है। फ़ाईनेंस उसके नाम से मिलता है... पिक्चर उसके नाम से चलती है... हँ हँ हँ हँ...!"

— "छोटे मोटे रोल के लिए आप बोले थे न... उसी के लिए।"

रज़ाक ने पास आकर सलिल की तरफ़ इशारा करते हुए कहा।

— "डायरेक्टर से मिलवा दे।"

— "ठीक है बॉस।"

डायरेक्टर सैट पर बैठा सिगरेट फूँक रहा था। धुआँ हवा में उड़ा रहा था और हीरो के सैक्रेटरी की बात सुन रहा था। सैक्रेटरी शायद प्रोड्यूसर के ख़िलाफ़ कह रहा था जिसका कि डायरेक्टर इत्तेफ़ाक कर रहा था। बात से बात निकलती जा रही थी। जब रज़ाक सलिल

को ले कर वहाँ पहुँचा तब वो लोग कौन-सी पिक्चर चली और कौन-सी 'फ़्लॉप' हो गई— इस चर्चा पर आ गए थे।

— "और वो भी छप्पन कुमार की पिक्चर... राम-राम!... दो दिन नहीं चली... दो दिन!"

— "अरे भर गए दिन छप्पन कुमार के यार... थे कभी स्टार... हो गया खेल अब..." सैक्रेटरी कह रहा था, "मेरी बात सुनिये! इस पिक्चर को तो आप ऐसा हिट बनाओ... ऐसा हिट बनाओ... दो चार धाँसू गाने-वाने डाल के कि दुनिया अपने चँचल खन्ना को याद रखे... ये छप्पन-वप्पन पुराने हो गए, सर! पब्लिक को तो कुछ नया माँगता है कि नईं!"

डायरेक्टर का ध्यान दो सामने खड़े लड़कों की वजह से टूटा।

— "क्या है?" उसने उचटी निगाह से उनकी तरफ़ देखकर सवाल किया।

— "सर... दादा बोले आपसे मिलवा दो।" रज़ाक ने कहा।

— "क्यों?"

— "सर, आपने छोटे-मोटे रोल के लिए बोला था।"

— "ठीक है... फ़ोटो ले लो... शाम को बताना..." फिर डायरेक्टर ने सैक्रेटरी की तरफ़ रूख कर लिया और बोला, "तुम देखते जाओ... इस पिक्चर में तो मैं जान लड़ा दूँगा। प्रोड्यूसर साला कँजूस है नहीं तो मैं भी कश्मीर-वश्मीर में साँग पिक्चराईज़ करता ... क्या मज़ा आता... लेकिन गुरु एक बात है।"

"क्या?"

— "मैं तो जान डाल दूँगा। चँचल खन्ना को स्टार बना कर ही छोडूँगा लेकिन फिर जब वो स्टार बन जाए तो कम से कम तीन पिक्चरें मेरी साइन करवा देना... दग़ा नहीं देना।"

— "क्या बात करते हो बड़े भाई... अपनी ज़बान है न... ज़बान... ये सर पत्थर की लकीर है... एक बार दे दी... क्या?... एक बार दे दी तो दे दी।"

सैक्रेटरी ने डायरेक्टर की तरफ़ हाथ बढ़ाया। दोनों ने हाथ मिलाए। इतने में एक असिस्टेंट ने आकर कहा—

— "चँचल जी रेडी हैं।"

— "फुल लाइट्स!" डायरेक्टर चिल्लाया और सब काम पर लग गए। सलिल ने रज़ाक से कहा, "मैं फ़ोटो कहाँ से लाऊँ?!"

रज़ाक ने मुँह पर उँगली रख कर उसे आँख से आगे बढ़ लेने का इशारा किया। दोनों वहाँ से खिसक लिए।

— "वो तेरा स्क्रीन टैस्ट! जाके देख ले ऑफ़िस में।"

— "इस हाल में?"

— "तो?"

सलिल भीगते हुए ही ऑफ़िस की सीढ़ियाँ चढ़ गया। अन्दर वाचमैन ने रोका। जब पता चला कि इसे प्रोड्यूसर ने बुलाया था तो उसने उसे वहीं ठहरा दिया। क्योंकि पानी

चूता हुआ तो ऑफ़िस में नहीं जा सकता था। अन्दर ख़बर भेजी गई। एक नौजवान बाहर आया, पूछा क्या बात है? फिर वापस अन्दर गया। लौट कर आया तो बोला, ''साहब बोले बताएँगे
... अभी कुछ नहीं है।''

सलिल मायूस होकर स्टेज टू पर फिर वापस आ गया।

– ''आज तो बारिश रूकती नहीं दिखती गुरु।'' सलिल ने कहा।

– ''अच्छा है साले... तू यहीं रूक जाना... रात भर किदर जाएगा।''

बात थी भी ठीक। जाएगा किधर। बारिश लगातार चली। बेतहाशा। सड़कें, नालियाँ, ट्रैफ़िक, टेलीफ़ोन, लाईट– सब बन्द हो गए। जो आने वाले थे आ नहीं पाए, जाने वाले जा नहीं पाए। शूटिंग 'पैक-अप' (समाप्त) कर दी गई। पैसे का सवाल था। छः बजे के बाद चलाते तो 'शिफ़्ट' और लग जाती। और कहीं काम करते-करते और देर हो गई तो लोगों को 'कन्वेंस' (किराया) देना पड़ता। वो प्रोड्यूसर क्यों दें? पानी उसने थोड़े ही बरसाया है। आवा जाही उसने थोड़े ही थामी है। लेकिन यूनिट वालों को चाय-नाश्ता तो मिलेगा ही। फिर छः के बाद अगर वो रुकते हैं तो अपने ख़ाने-पीने का खुद इन्तजाम करें। फ़िल्मिस्तान बड़ा स्टूडियो था। कई यूनिट शूट कर रही थीं। क्योंकि बारिश के मौसम का कोई ठीक नहीं होता कब पानी आ जाए इसलिए तक़रीबन सभी लोग स्टूडियो में ही (इन्डोर) शूट करते हैं। आउटडोर या लोकेशन शूटिंग बारिशों में तक़रीबन बन्द रहती है। तो जब इतने लोग स्टूडियो में होंगे और खाएँगे-पियेंगे तो सारा बोझ कैन्टीन पर आएगा। कैन्टीन वाला भी सामान नाप-तौल कर रखता है। इस मौसम में थोड़ा ज़्यादा लेकिन फिर भी कितना रखेगा! शाम होते होते 'पाव-आमलेट' के अलावा कुछ बचा नहीं। वो भी थोड़ी देर में ख़त्म हो जाने वाला था।

– ''पाव-आमलेट?'' रज़ाक ने सलिल से सवाल किया।

– ''अँडा! मैं नहीं खाता।''

– ''अबे चूतिये... जो मिलता है खाले नहीं तो साले मर जाएगा... फिर अपने धरम को गले में बाँध के ता-ता-थैया करते रहना।

– ''कभी खाया नहीं।''

– ''तो अब खा ले... और कुछ है भी नहीं... और ये भी ख़त्म होने वाला है।'' फिर रज़ाक ने तपाक से कैन्टीन वाले को ऑर्डर दिया। ''दो आमलेट पाव... कड़क!''

कैन्टीन वाले को प्रोडक्शन का नाम मालूम था वह उस हिसाब में लिख देगा।

उस रात सलिल फ़िल्मिस्तान स्टूडियो के गलियारें में बैठे-बैठे ऊँघता रहा। यही शुक्र मनाता हुआ कि चलो कम से कम आज के दिन इस बारिश और भूख से छूट्टी मिली।

5

– ''तारा साहब!... कहाँ खो जाते हो यार आप...!'' हीरानंदानी ने बड़ी गर्मजोशी से तारा को अपने ऑफ़िस में वैलकम करते हुए कहा।

– ''वड़ी साईं... आना तो था पड़ मैं थोरा चक्कर में था।''

– ''आओ... आओ... बैठो... बैठो...!''

तारा के पीछे-पीछे दाख़िल हुई एक बेहद ख़ूबसूरत लम्बी-सी लड़की जिसने एक तंग हल्का गुलाबी शलवार क़मीस पहना हुआ था– क़सीदे वाला– और उसका दुपट्टा बेपरवाही से उस पर लहरा रहा था। लड़की की आँखों में कुछ चमक थी, कुछ होशियारी थी, कुछ शक था।

– ''ये है माधुड़ी! आपसे मिलवाने लाया हूँ। आपको इसको तो ड़ोल देना परेगा।''

– ''हाँ जी... हाँ जी...! क्यों नहीं... क्यों नहीं। बैठो, बैठो।''

माधुरी ने अदब से नमस्ते की और तारा के बग़ल वाली कुर्सी पर बैठ गई। फिर वो हीरानंदानी को और उसके अंदाज को लगातार देखती-तौलती रही।

– ''तारा जी... अपना फ़ाइनेंस का किया कुछ?''

– ''हन्ड्रेड पड़सेंट जी... वो ई तो चक्कर में था नी में। माड़वाड़ी चालीस टका लेगा ... साल भड़ में वापस।''

– ''चालीस टका! तारा जी... मेरे तारा... तुझ मुझे मार रहे हो कि तार रहे हो। ...चालीस टका! ओ नईं यार... नईं... इतना इन्ट्रेस्ट कौन देगा। फिर साल भर में पिक्चर न बनी तो?''

– ''बनेगी क्यों नहीं... हिड़ोइन सामने है... इसकी डेट्स एवेलेबल हैं... हीड़ो... ड़ाजेन्द्र कुमाड़ ले लेंगे। डेट्स भी मैं दिला दूँगा। बस। बन गई पिक्चड़। डिस्ट्रिड़ीब्यूट मुझे कड़नी है... समझो मैंने साड़ी टैड़िटड़ी ले ली... दस लाख मैं एडवांस देता हूँ। हो गया एक कड़ोड़ का काम। वड़ी पचास लाख कमाएगा तो चार लाख एक्स्टड़ा इन्टड़ेस्ट देने में क्या पड़ॉब्लम है?''

फिर तारा ने बड़ी तकलीफ़ से कहा, ''बहुत गड़मी है तेड़े कमड़े में हीड़ा जी।'' तारा ने अपनी क़मीस के बटन खोल कर मेज़ से एक फ़ाइल उठाकर उससे पँखा झलना शुरू कर दिया।

हीरानंदानी ने मेज़ पर की घंटी बजाई। एक नौकर दाखिल हुआ। उन्होंने आदेश दिया कि ए.सी. की ठंडक बढ़ाई जाए और मेहमानों के लिए चाय का बन्दोबस्त किया जाए।

— "पिक्चड़ शुडू कड़ो साईं... टाईम वेस्ट मत कड़ो... मैं कल ही दिल्ली फ़्लाइट में आड़हा था और मेड़े साथ में बोलो कौन आया... साथ में आया हीड़ो ड़ाजेन्द्र कुमार। मेड़ी साड़ी बात हो चुकी है। क्या?"

— "तो साइन करवाओ!"

— "वड़ी साइनिंग एमाउँट ड़ेडी है क्या? कल ही उसके सैकड़ेटड़ी को फ़ोन लगाता हूँ।"

उसके बाद तारा जी उठकर टॉयलेट चले गए। हीरा ने माधुरी से बात शुरू कर दी। माधुरी ने हीरा को अपनी तस्वीरें दिखाईं। हीरा ने उसकी तारीफ़ की और उसका फ़ोन नम्बर लिया।

— "कल शाम को आ जा! आज मैं ज़रा झँझट में हूँ। कल शाम को आराम से बैठते हैं। प्रोग्राम सैट करते हैं।" हीरा ने बड़ी आत्मीयता से कहा।

इतने में तारा भी वापस आ गया और चाय भी आ गई। हीरानंदानी प्रोड्यूसर था लेकिन उसकी पिछली दो पिक्चरें ज़रा नरम गई थीं इसलिए उसको फ़ाइनेंस की प्रॉब्लम हो रही थी। उसके साथ कोई बड़ा स्टार भी काम करने से कतरा रहा था। तारा फ़ाइनेंस ब्रोकर था। फ़ाइनेंस ब्रोकर याने वो दलाल जो ब्याज पर फ़ाइनेंसरों से प्रोड्यूसरों को पैसा उधार दिलवाता था। तारा को मूल पर दो प्रतिशत कमीशन मिलता था, फ़ाइनेंसर को भरपूर ब्याज और प्रोड्यूसर को फ़िल्म बनाने के लिए मूड़ी। तारा छोटा-मोटा डिस्ट्रीब्यूटर भी था। ऑपेरा हाउस के पास लैमिंगटन रोड पर नाज़ बिल्डिंग के तीसरे मंज़िल पर उसका किराए पर लिया हुआ एक छोटा-सा कमरा था जो उसका ऑफ़िस था। लेकिन वो दफ़्तर में कम और प्रोड्यूसरों-फ़ाइनेंसरों के यहाँ ज़्यादा होता था। इन्डस्ट्री में तारा को सब लोग जानते थे। जो काम कोई न कर सके वो तारा कर देता था। फ़ाइनेंस से लेकर, डिस्ट्रीब्यूटर को पिक्चर बिकवाने, हीरो-हीरोइन साइन करवाने या प्रोड्यूसर्स और फ़ाइनैंनसर्स को नई-नई हीरोइन बनने की ख़्वाहिशमंद लड़कियों से मिलवाने तक। तारा सर्व-सक्षम था। इसलिए तारा को सारी इण्डस्ट्री जानती थी और तारा भी सारी इण्डस्ट्री को बड़ी अच्छी तरह जानता था। उसे मालूम था कि किससे क्या काम लेना है और कैसे?

हाल ही में हिन्दी फ़िल्मों में एक नई हीरोइन आई थी— सुनंदा। उसको भी फ़िल्मों में तारा ही लाया था। हीरोइन उसी ने बनाया था।

तारा सुनंदा से शिमला में मिला था। वह किसी रजवाड़े ख़ानदान से ताल्लुक़ रखती थी। बेइन्तहा ख़ूबसूरत और बेहद शाइस्ता, तहज़ीब मन्द। ख़ानदान शरीफ़ इतना था कि जिससे हाथ मिला लिया उसका यक़ीन भी कर लिया, उसे दोस्त समझ लिया। सुनंदा के पिता का उसके बचपन में ही देहान्त हो चुका था। शादी उसकी करवाई उसके चाचा ने जो कि कभी लाहौर के पुराने बाशिंदे हुआ करते थे। शादी भी सुनंदा की शिमला के एक रईस के साथ हुई थी। हजारों एकड़ जमीन, हवेली, तमाम नौकर-चाकर, वैभव।

लेकिन इस दुनिया का दस्तूर है कि या तो सब कुछ मिलता नहीं या इत्तेफ़ाक़ से अगर मिल भी जाए तो ज़्यादा देर टिकता नहीं। सुनंदा के पति की शादी के दो साल बाद ही अचानक मौत हो गई। हुआ ऐसा कुछ भी नहीं था बस वो घोड़े से गिर पड़े थे और सर में ज़रा सी चोट लग लई थी। कुछ दिन दर्द रहा था— बस— फिर दस दिनों के भीतर ही मौत हो गई। इस मौत के बाद सुनंदा बेहद अकेली थी। शिमला की ख़ूबसूरत वादियाँ उसे काटने आती थीं और रह-रहकर उसे लगता था कि वह यहाँ से भाग जाए। बाप मर चुके थे, पति मर गया था, माँ से कोई ख़ास रिश्ता नहीं था और चाचा जो कभी लाहौर के थे अब अमरीका के हो रहे थे। सुनंदा दिन सिर्फ़ फ़िल्में देख-देखकर काटा करती थी। कभी अपनी नौकरानी के साथ, कभी बग़ल वाली दो चार महिलाओं और लड़कियों के साथ— बस।

ज़िन्दगी यों ही कट रही थी कि एक दिन प्रदेश टूरिज़्म की एक गाड़ी आकर दरवाजे के सामने रूकी और उसमें से दो आदमी निकले। वे इस हवेली की मालकिन से मिलना चाहते थे। सुनंदा किसी से मिलती नहीं थीं लेकिन सरकारी गाड़ी आई थी उसने सोचा न जाने क्या बात है। वह बाहर आई।

— "ये साहब बंबई से आए है।" सरकारी आदमी ने कहा, "शिमला में शूटिंग करना चाहते हैं और लोकेशन ढूँढ रहे हैं। अगर आपको ऐतराज़ न हो तो आपकी कोठी भी देखना चाहते हैं।

— "क्यों?"

— "अगर आप परमीशन दें तो ये आपके यहाँ शूटिंग करें।"

सुनंदा से उस अफ़सर से नज़र हटाकर फ़िल्म वाले की तरफ़ देखा।

—"नमस्ते जी! मेड़ा नाम ताड़ा है... मैं बंबई से आया हूँ, फ़िलम शूटँग के सिलसिले में।"

सुनंदा को इस शख़्स के बोलने और लहजे पर हँसी आई लेकिन वह दबा गई। उसने कहा, "हम ये हवेली किसी को देते नहीं हैं।"

— "वड़ी हम हवेली लेने थोरी आया नी... तीन दिन का शूटँग हैं। बंबई से हीड़ो आएगा, हीड़ोइन आएगी... फ़िड़ आपको जो तय होगा वो भाड़ा भी मिलेगा।"

— "नहीं-नहीं... आप कहीं और जाएँ।"

फिर तारा ने बड़ी गहरी और बड़ी बेशर्म लगातार नज़र से सुनंदा को देखा फिर उसकी आँखों में आँखें डालकर बोला—

"माई गॉड! ...वड़ी आप इतना खबसूड़त है कि हमको हीड़ोइन लाने का जड़ूड़त ही नहीं है। हमाड़ा हीड़ो प्रदीप जी है... आप उसके साथ हीड़ोइन का काम कड़ेगा हमाड़ी पिक्चड़ में? हम आपको पैसा भी देगा और पोस्टड़ पड़ आपका नाम भी छापेगा।"

सुनंदा को अजीब-सा लगा और उसके चेहरे पर मुस्कुराहट भी तैर गई। "नईं नईं ... आप कहीं और जाएँ।"

— ''वड़ी सोच लो... माड़ो गोली लोकेशन को। एक्टिंग के बाड़े में सोचो।'' फिर तारा ने अपना कार्ड निकालकर उसे दिया, ''ये मेड़ा काड़ड है... इड़ादा बदलो तो मुझे फ़ोन कड़ना।''

सुनंदा ने कार्ड रस्मन रख लिया और वो अन्दर आ गई।

तारा होशियार था। वो जानता था कि कार्ड क्या अगर अपना पूरा शज़रा भी वो उसे दे आए तो भी सुनंदा उसे कभी फ़ोन नहीं करेगी। इसलिए वह दूसरे दिन फिर उसके घर पहुँच गया। उसने फिर उसकी तारीफ़ की और उसे हीरोइन बनने के सपने दिखाए। तारा की नज़र में सुनंदा की हवेली और उसकी सम्पत्ति बैठ गई थी और एक फ़ाइनेंस ब्रोकर को पैसा सीधा होता दिख रहा था। अगर इस लड़की को बेवकूफ़ बनाकर इससे फ़िल्मों में पैसा लगवा दिया जाये तो क्या मज़ा आ जाए। लड़की ख़ूबसूरत भी है सो वो फ़ायदा अलग।

जब बंबई से फ़िल्म यूनिट आ गई और शूटिंग शूरू हो गई तब तारा ने सुनंदा को सैट पर बुलाकर सारे स्टार्स से मिलवाया, बेहद इज़्ज़त दी। फ़िल्म के हीरो ने— जो उस समय का कामयाब सितारा था— भी सुनंदा की ख़ूबसूरती की तारीफ़ की और तारा की ही बात दोहराई कि ''बंबई आकर तो देखिये... फ़िल्म वाले आप को हाथों-हाथ लेंगे। आप हाँ तो कहिए फ़िल्म तो मैं भी आपके साथ करने को तैयार हूँ। अभी।''

बहरहाल लगातार सात दिन जब सुनंदा के ज़हन में यह बात जाती रही— और वो भी उन लोगों के माध्यम से जिनको अब तक परदे पर ही देखा था, अब सामने मौजूद थे, तो सुनंदा आधे मन से ही सही इस बात को मान गई। बम्बई में तारा ने वादा किया कि वह उसके लिए जुहू में एक फ़्लैट का बन्दोबस्त कर देगा।

सुनंदा के मानने में लाईफ़ से उसकी बोरियत, पैसे की व्यर्थता और ख़ालीपन का ज़्यादा हाथ था। बंबई की चमक-धमक और फ़िल्मी दुनिया का कम।

लिखे का खेल कहिए, अनहोनी कहिए सुनंदा बंबई आ गई। तारा ने उसके लिए पाँच हज़ार रुपये माहवार पर जुहू तारा रोड पर एक बिल्डिंग में एक अच्छा-सा फ़्लैट ठीक कर रखा था। पाँच हज़ार महीना देना सुनंदा के लिए कोई मुश्किल बात न थी।

बंबई आ गई तो तारा ने उसे तमाम प्रोड्यूसरों, डायरेक्टरों से मिलवाया। पार्टियों में ले जा-जाकर इण्डस्ट्री के तमाम और लोगों से मिलवाया। हीरो जो भी सुनंदा से मिलता उसकी ख़ूबसूरती और तहज़ीब का मुरीद हो जाता।

पंद्रह दिनों बाद तारा हीरो प्रदीप (जो कि शिमला में शूट करने गया था) को लेकर सुनंदा के फ़्लैट पर पहुँचा। सब का खाना वहीं खाने का प्रोग्राम था। अच्छी-अच्छी वाइन और व्हिस्की की बोतलें फ़्लैट में मौजूद थीं। मेज़ लगवा दी जा चुकी थी। खाना बग़ल के फ़ाइव स्टार होटल सैन्टॉर से आना था। लेकिन वो खाना भेज नहीं रहे थे इसलिए किसी को पैक करवा कर लाना था। ज़िम्मा तारा ने लिया। प्रदीप ने पहले तो इधर-उधर की बातें कीं फिर आहिस्ता-आहिस्ता सुनंदा की तारीफ़ करते हुए उसे चूमा। वाइन अपना कुछ असर कर चुकी थी। लेकिन वाइन से ज़्यादा ये था कि किसी मर्द की कुर्बत

से बदन बहुत दिनों से महरूम रह चुका था। हालाँकि शर्म और एहसास बाक़ी थे। सुनंदा ने प्रदीप को झिड़क दिया। लेकिन बिल्ला जानता है कि कब मछली वाला नाराज़ है और कब उसका मन बन रहा है। प्रदीप ने सुनंदा को बाहों में भरकर होंठों पर जब अपने होंठ रखे, सुनंदा ने एक आध बार उसे बरतरफ़ करने की कोशिश ज़रूर की लेकिन मुद्दत से प्यासी इन्द्रियों की पुकार को वो नकार न सकी। फिर बहुत देर उस फ़्लैट में अंधेरे में चरागाँ होता रहा। हर साँस में प्रदीप उसकी तारीफ़ करता रहा।

तारा जब खाना लेकर आया तब तक दो घंटे बीत चुके थे। शायद उसने इसीलिए इतनी देर लगाई थी। हालाँकि उसके चेहरे से ये बात क़तई ज़ाहिर नहीं हुई।

दूसरे दिन सुनंदा को लेकर वो चोपड़ा जी के पास गया। चोपड़ा जी बड़े प्रोड्यूसर थे। इण्डस्ट्री में उनका नाम था। उनकी फ़िल्मों के लिए डिस्ट्रीब्यूटर और फ़ाइनेंसर लाइन लगाए खड़े रहते थे। चोपड़ा जी वैसे भी अपने घर के पैसे से कोई फ़िल्म नहीं बनाते थे। पैसा आएगा तो फ़िल्म आगे बढ़ेगी नहीं तो 'रोक दो'। हालाँकि 'रोक दो' का मौक़ा आजतक कभी नहीं आया था लेकिन उसूल उनका यही था।

— ''ये हैं सुनंदा जी! हीड़ोइन हैं! बड़ी मुश्कल से इन्हें मना कड़ लाया हूँ।''

चोपड़ा जी ने सारी बात सुनी। फिर उन्होंने तय किया कि वे सुनंदा को हीरोइन लेने को तैयार हैं बशर्ते कि वो फ़िल्म में पैसा लगाए और शिमला में अपनी हवेली में फ़िल्म की सारी शूटिंग करने दे। सुनंदा को मनाने का काम तारा का था।— हीरो प्रदीप तय किया गया।

— ''उसके साथ! ...अरे छोड़ो यार!'' प्रदीप ने कहा, ''साली मुर्दा है... कोई जान नहीं... लकड़ी है लकड़ी! तुम्हीं करो जो करो वो कुछ नहीं करेगी। ऐसी लौंडिया किस काम की। मैं नहीं करता उसके साथ पिक्चर।''

— ''लौंडिया मत देखो... वड़ी... फ़िलम देखो... पैसा देखो साईं... चोपड़ा जी बनाएँगे, वड़ी पिक्चड़ है... डबल पड़ाइस दिलवाऊँगा।''

सुनंदा ने कहा, ''पैसा क्यों लगाऊ मैं?''

— ''अड़े साईं, पैसा लगाने को कौन बोला... पचास हज़ाड़... प्रोड्यूसर थोरा मुश्कल में है नी... हीरो भी पैसा दे ड़हा है, थोरा तुम भी देओ... मैं भी देड़हा हूँ। पिचड़ तो आगे बढ़े नी।''

मना-फुसलाकर सुनंदा का पचास हज़ार रुपया फ़िल्म में लग गया। पिक्चर शुरू हो गई। यूनिट शिमला पहुँच गई। शिमला में पाँच दिन बाद प्रोड्यूसर के पैसे ख़त्म हो गये। उसे कुछ 'उधार' चाहिए था। एक लाख रुपये फिर माँग लिए गए। प्रदीप का सुनंदा के साथ सोने का रास्ता खुल ही चुका था। एक दिन टहलते-टहलते रात को तारा आ गया। सुनंदा नाईट गाउन में सोने ही जा रही थी। तारा पहुँचा तो कुछ देर बातचीत हुई फिर उसने जो हाथ फिराने शुरू किये तो सुनंदा की नाईटी के नीचे तक पहुँच गए। चिल्लाना बेकार था। चिल्लाती तो अपनी ही बदनामी करवाती। यूनिट वाले सुनते तो मज़ाक़ ही उड़ाते। सुनंदा ने तारा को थप्पड़ मार दिया।

— "साली थप्पड़ माड़ती है" तारा ने सुनंदा को जवाबी थप्पड़ मारा, "फ़िल्म में लेके आया मैं, हीड़ोइन बनवाया मैंने... उस चूतिये प्ड़दीप को देती है मेड़े को नईं देती... मैं तुझे बड़बाद कड़ सकता हूँ... समझी न।" और तारा ने सुनंदा के कपड़े उतार दिए और बाकायदा उस पर चढ़ गया।

शिमला में महीने भर शूटिंग के बाद शूटिंग बम्बई में भी थी। स्टूडियो में। वापस आकर चोपड़ा जी ने पैसों का तक़ाज़ा किया। तब तक सुनंदा की जेब से धीरे-धीरे करके चालीस लाख रुपये ख़र्च हो चुके थे। पूरी पिक्चर उसके पैसों से बनी थी और उस चालीस लाख में से न जाने कितना तारा और चोपड़ा ने 'अन्दर' कर लिया था। सुनंदा की हालत ये हो गई थी कि उसे जुहू के फ़्लैट का किराया देना भी अब दूभर हो रहा था। अब वो टैक्सी से नहीं बस लेकर प्रोडक्शन ऑफ़िस आती थी। ज़मीनें बिक चुकी थीं, हवेली उसकी गिरवी रखी थी और ब्याज अदा करने का उसके पास पैसा नहीं था। जब वो अपना फ़िल्म में लगाया पैसा माँगती तो उसे टका-सा जवाब मिलता, "पिक्चर तो रिलीज़ होने दे। पैसे का ढेर लग जाएगा तेरे पास। हिट पिक्चर है।"

रिलीज़ के पहले पिक्चर की कोई ख़ास पब्लिसिटी नहीं थी। प्रोड्यूसर को कुछ पड़ी नहीं थी क्योंकि पिक्चर तो किसी की भी थी नहीं। पिक्चर बैठ गई। गाने अलबत्ता थोड़े बहुत चले। लेकिन गानों से इतना पैसा उन दिनों थोड़े ही आता था।

हालाँकि सुनंदा पटक गई थी, ग़मज़दा थी लेकिन थी तो जवान और अब भी ख़ूबसूरत। अब वो अपने फ़्लैट के किराये और अपने ख़र्चे के लिए धंधा करने लगी। तकलीफ़ के दिनों में उसने पीना भी शुरू कर दिया था। महीने में कम से कम दो-तीन बार एक-आध हीरा व्यापारी उसे बुला लेता था।

हिन्दुस्तान में अरबी भी इस ज़माने में बहुत आने लगे थे सो उनको ये सुनकर बहुत ख़ुशी होती थी कि जिस लड़की के साथ वो सोने वाले हैं वो फ़िल्म स्टार है। सुनंदा के दलाल भी पैदा हो गए थे और अब शिमला छूट कर बंबई ही उसका मुस्तक़बिल हो गया था। फ़िल्म वालों के नाम से उसे नफ़रत हो गई थी और जब कहीं भूले भटके अगर किसी फ़िल्म का आफ़र आ भी जाता तो वह उसका फ़ोन भी नहीं लेती थी।

इसी के चलते एक दिन एक अरबी ने उसे प्रैसीडेंट होटल कफ़ परेड पर बुलाया। बात करते-करते पता नहीं क्या तो पूछा और जवाब में क्या समझा— उसने अपनी जलती हुई सिगरेट सुनंदा की जाँघ पर रगड़ कर बुझा दी। सुनंदा जलन में चिल्लाई तो शेख़ ने उसे ज़ोर से थप्पड़ मार दिया।

उसको ग़ज़ब सदमा पहुँचा। उस दिन की रात के बाद सुनंदा ने अपने फ़्लैट से निकलना बन्द कर दिया। वह नीचे ही नहीं उतरती थी। शायद बीमार हो गई थी। तीन दिन बाद जब उसके फ़्लैट से बदबू आने लगी और जब दरवाज़ा तोड़ा गया तब पता चला कि सुनंदा मर गई थी और सड़ रही थी। उसको ले जाने और जलाने का काम महानगर

पालिका के कर्मचारियों ने किया। वे आपस में बतियाते रहे कि ये फ़िल्म हीरोइन थी और उन लोगों ने उसे वही इज़्ज़त दी।

दूसरे दिन जब अख़बारों में ख़बर छपी तब तारा माधुरी को लेकर हीरानंदानी के दफ़्तर में गया हुआ था और चोपड़ा जी एक नये उभरते हुए 'हीरो मैटीरियल' चँचल खन्ना की तस्वीरें देख रहे थे।

हीरानंदानी का प्रोडक्शन दफ़्तर खार में लिंकिंग रोड पर पहली मंजिल पर था। बड़े-बड़े शीशे लगे थे जहाँ से ख़ूब रोशनी आती थी। सामने बाहर निकले तो छत थी— बहुत बड़ी नहीं लेकिन अच्छी ख़ासी, जहाँ से नीचे का ट्रैफ़िक और आता-जाता नज़ारा दिखता था। दूसरे दिन शाम को जब माधुरी हीरानंदानी के दफ़्तर में आई तब ऑफ़िस बन्द हो चुका था। सिर्फ़ एक चपरासी बचा था जो कि बस जाने ही वाला था। हीरा अपनी 'टैरेस'— छत— पर आराम से एक कुर्सी पर बैठा दूसरे पर पाँव लम्बे किए व्हिस्की की चुस्की ले रहा था।

— "आओ... आओ... व्हिस्की?"

— "नहीं जी... मैं...।"

— "पीती हो तो पियो यार... शर्माना कैसा?"

— "मैं नहीं पीती।"

— "अच्छा बैठो।"

और बैठते ही हीरा ने माधुरी के गालों और गर्दन पर हल्के-हल्के हाथ फिराना शुरू कर दिया। माधुरी पहले शर्माइ फिर उसने कुर्सी थोड़ी दूर खिसकाई लेकिन उसका नतीजा ये हुआ कि हीरा ने उसे पकड़ कर अपनी तरफ़ ज़ोर से एक झटके से खींचा और फ़ौरन उसे सीने से चिपटा लिया। गले से गले, होंठ से होंठ, गाल से गाल मिलते रहे। गर्मी पैदा होती रही।

— "आ चल... अन्दर चलें।"

अन्दर हीरा के दफ़्तर में लम्बा-सा गद्देदार सोफ़ा रखा था जहाँ उसने माधुरी को लेटाया और उसकी साड़ी को उसकी जाँघों तक उघाड़ दिया। सुडौल, सुतवाँ बीस साला जवान टाँगे देखकर हीरा की नसों में व्हिस्की की गर्मी बढ़ गई और उसने अपनी पैंट उतारी। माधुरी हीरोइन बनने आई थी। उसने हालाँकि कि शुरू-शुरू में 'नहीं-नहीं' की एक्टिंग की— लेकिन वह केवल एक्टिंग थी। उसे भी मालूम था कि अगर यही रास्ता है तो यही सही!

6

नारंग साहब जो पिक्चर यूसुफ़ ख़ान के साथ बना रहे थे उसकी रिलीज़ की पब्लिसिटी ज़ोरों पर थी। जगह-जगह पोस्टर लग रहे थे। फ़िल्म मराठा मंदिर में रिलीज़ होने वाली थी। वहाँ एडवांस बुकिंग की लाईनें लगने लगी थीं। उस फ़िल्म के रेडियो पर अमीन सायानी की आवाज़ में इश्तिहार पर इश्तिहार आ रहे थे। गाने रिलीज़ हो गए थे इसलिए बिनाका गीत माला में हर हफ़्ते किसी न किसी 'पायदान' पर उस फ़िल्म के गाने बजते थे। एक-आध यूसुफ़ के ख़ास अंदाज़ वाला डायलॉग भी रेडियो पर सुनाई देता था— ऐड की सूरत। फ़िल्म की बहरहाल ज़बरदस्त हवा थी। चँचल यूसुफ़ के सामने बहुत नया और बहुत छोटा एक्टर था। उसकी भी एक फ़िल्म आने वाली थी। लेकिन यूसुफ़ की फ़िल्म की रिलीज़ के लिए तीन हफ्ते पहले और उसके तीन हफ्ते बाद कोई भी पिक्चर रिलीज़ नहीं होने दी जा रही थी। एडवांस बुकिंग तगड़ी थी। सारे इण्डस्ट्री वाले तो मान के बैठे थे कि यूसुफ़ की फ़िल्म है मतलब सुपरहिट! फ़र्स्ट डे फ़र्स्ट शो हाऊस-फुल।

लेकिन शुक्रवार को जब तीन बजे पहला शो छूटा और जब थियेटर से भभका छोड़ती भीड़ निकली तो पिक्चर को गालियाँ देती हुई। यूसुफ़ हो या कोई पब्लिक जब तक पसंद करती है-करती है। लेकिन जब पसंद नहीं आती पिक्चर तो बस एक मिनट में फ़ैसला— बेकार! जिसे फ़िल्म वाले क़रार देते हैं— 'फ्लॉप'!

पिक्चर फ़्लॉप याने यूसुफ़ फ़्लॉप। मार्केट डाउन। जो कल तक तलवे चाटते थे अब अपनी दुकान बढ़ा गए।

हालाँकि यूसुफ़ की उम्र हो चली थी। वो अब ढलान पर था लेकिन हाथी तो हाथी है— मर जाए तो भी सवा लाख का। इसलिए इण्डस्ट्री में रूतबा क़ायम था। हालाँकि अब ज़रा लोग सामने-सामने हाँ में हाँ मिलाते थे, पीछे परवाह नहीं करते थे।

सवाल ये भी था कि दो एक पिक्चरें और भी हैं यूसुफ़ की— अंडर प्रॉडक्शन, इत्तेफाक़ से उनमें से अगर एक भी चल गई तो इनका स्टारडम फिर वापस आ जाएगा। इसलिए इनसे बिगाड़ क्यों किया जाए। हालाँकि दौर बदल रहा था। नया लड़का, नई लड़की, नये लोग, नयी कहानियाँ, नई पिक्चरें— धीरे धीरे सब कुछ नया पुराने को बेकार करता जा रहा था।

नारंग साहब अपना सबकुछ इस पिक्चर के लिए दाँव पर लगा चुके थे। दफ़्तर, घर, गाड़ी, ज़ेवरात— सब! उनको इस पिक्चर से बहुत उम्मीदें थीं।

— "पिक्चर तो नारंग जी सत्यानाश थई गई। पैसा गेयो।" राम जी भाई ने फ़ोन किया। शुरुआती इशारा था— शराफ़त से।

इस पिक्चर के तीन फ़ाइनेंसर थे। सबका हिस्सा था। पैसा, ब्याज और एक-एक टैरीटरी। उन तीन में से एक फ़ाइनेंसर राम जी भाई था— कच्छी— और कच्छी अपना पैसा समझता है। बाक़ी दो सिंधी थे वो तो शनिवार से ही नारंग के पीछे पड़े थे— पैसा वापस करो। नारंग डिस्ट्रीब्यूटर से माँगता था वो कहते थे, "हम पैसा कहाँ से दें, हम तो इस पिक्चर में लुट गए।"

दरअसल नारंग साहब लालच में मारे गए। अगर वो पिक्चर को आउट राइट— सीधे पैसे लेकर— डिस्ट्रीब्यूटर को बेच देते तो उनके पास पैसा ज़रा कम आता— लेकिन आ जाता। लेकिन इन्होंने सोचा पिक्चर में यूसुफ़ है, पिक्चर अच्छी बनी है, नये क़िस्म की कहानी है, चलेगी ज़रूर। उन्होंने डिस्ट्रीब्यूटर से प्रॉफ़िट शेयर करने का सौदा कर लिया। फ़िफ़्टी-फ़िफ़्टी। ये नहीं सोचा कि अगर नहीं चली तब क्या होगा? नारंग साहब क्योंकि पुराने प्रोड्यूसर थे इसलिए किसी ने न कोई सलाह दी न किसी तरह की सलाह की ज़रूरत ही समझी। नारंग साहब छू दें तो सोना! यूसुफ़ जिस पिक्चर में हो वो सुपरहिट। तो फिर सवाल क्या?!

नारंग साहब लेकिन इस बार सर पकड़ कर बैठ गए। ऑफ़िस में मुर्दनी छा गई। तमाम लोगों का पेमेंट बाक़ी था जो कि पिक्चर रिलीज़ पर मिलना था। मिल तो रिलीज़ के पहले ही जाता लेकिन नारंग साहब बड़े प्रोड्यूसर थे इसलिए कोई अड़ता नहीं था। इनके यहाँ से पैसा कहाँ जाएगा! लेकिन अब लेनदारों के आने का ताँता लगने लगा। माँगने वाले सुबह से शाम मुँह बाये खड़े रहते। तो पहले तो नारंग साहब ऑफ़िस में आते थे तो सबसे मिलना पड़ता था। फिर कहलवाने लगे कि कह दो 'बिज़ी हैं'। फिर उन्होंने खुद ही ऑफ़िस आना बन्द कर दिया। लेकिन बन्द आना तो उन्होंने किया था, लेनदारों ने थोड़े ही किया था। वे आते रहे और उनके फ़ोन आते रहे।

फिर जब नारंग जी काफ़ी दिनों बाद दफ़्तर और घर दोनों जगहों पर नहीं मिले तो उनके नाम से नोटिस आने लगे।

पहले तो बड़े-बड़े लेनदारों को जितना बन पड़ा नारंग साहब ने घर में रखे 'कैश' से अदायगी की। लेकिन वह कितना पूरा पड़ता! दफ़्तर गिरवी था, घर गिरवी था और पैसा लेने वाला सिर्फ़ पैसा समझता है। इन्सानियत समझे तो पैसा भाग जाए। इसलिए इन्सानियत छोड़कर उन लोगों ने पहले दफ़्तर फिर घर की कुर्क़ी करवा ली। नारंग साहब जो गाड़ी के नीचे पाँव नहीं रखते थे एक छोटे से 'वनरूम किचन' में शिफ़्ट करने पर मजबूर हो गए। उनके बीवी-बच्चे जो हमेशा उनका दम भरते थे उनको कोसने लगे और कोसने लगे उसके साथ बँधी अपनी क़िस्मत को। ग़र्ज़े कि घर, दफ़्तर, पुरानी पिक्चरें सब एक पिक्चर की नज़र हो गए। लोग जो पहले उनके

इतनी महँगी पिक्चर बनाने की हिम्मत की दाद देते थे अब उसे उनकी बेवकूफ़ी क़रार देने लगे।

यूसुफ़ ख़ान जो दिन में तीन-तीन फ़ोन करता था उसने महीनों हाल तक न पूछा। उसका क्या बिगड़ता था। वह तो अपने पैसे सीधे कर ही चुका था। उसकी तो इमेज को धक्का लगा था। उसकी तीन पिक्चरें और लाईन में थीं। अगर उनमें से एक भी आने वाले वक़्तों में हिट हो गई तो उसके फिर से वारे-न्यारे। मरे तो प्रोड्यूसर और डिस्ट्रीब्यूटर। तो मरें! एक्टर की बला से!

मज़ा लेकिन तब और बढ़ गया जब तीन हफ़्तों बाद चँचल खन्ना की फ़िल्म रिलीज़ हुई। गाने रिलीज़ हो चुके थे लेकिन 'हिट' नहीं हुए थे। बस बजते थे इधर-उधर। जब पिक्चर रिलीज़ हुई, तब क्योंकि इससे पहले तीन हफ़्तों तक कोई पिक्चर मार्केट में नहीं आई थी इसलिए दर्शक भूखे बैठे थे, पहला शो तो हाउसफुल था। लेकिन शनिवार-रविवार के टिकट अभी भी मिल रहे थे। पर शुक्रवार को फ़र्स्ट शो जब छूटा तब तहलका मच गया। पिक्चर पब्लिक ने हाथों-हाथ ली। गाने पिक्चर में सिचुएशन के हिसाब से थे तो जो भी अभी तक इधर-उधर कभी-कभार बजते सुनाई दे जाते थे अब धड़ल्ले से लगातार हिट हो रहे थे। शो पे शो फुल हो रहा था और चँचल रातों रात स्टार बन चुका था। ये बात यूसुफ़ को पसंद नहीं आई। ऐसा कैसे हो गया कि उसकी पिक्चर 'डिब्बा' और कल के आए लौंडे की पिक्चर 'हिट'! यूसुफ़ के आदमियों ने रिकॉर्ड कम्पनी को फ़ोन किये।

— "ये क्या कर रहे हैं आप? ऐसे रिकॉर्ड प्रोमोट कर रहे हैं।"

स्टार के लोगों का फ़ोन था। सफ़ाई देनी पड़ी। लेकिन उन्होंने साफ़ कहा कि वे कुछ नहीं कर रहे हैं। लोग रिकॉर्ड ख़रीद रहे हैं फिर बजा रहे हैं। रेडियो सीलोन से जवाब तलब किया गया। बिनाका गीत माला वालों ने कहा, "हम तो वो गाना बहुत निचली पायदानों पर बजा रहे हैं। और भई बजाना तो पड़ेगा न... क्योंकि हिट तो वो हैं।"

पिक्चर हिट तो हीरो हिट, हीरोइन हिट, डायरेक्टर हिट, संगीतकार हिट, गीतकार हिट प्रोड्यूसर हिट यहाँ तक कि कास्ट्यूम और मेकअप वाला भी हिट। और पिक्चर फ़्लॉप तो सब कुछ फ़्लॉप— प्रोड्यूसर से लगाकर नीचे तब सब फ़्लॉप! अजब दुनिया है। जुआ!

बहरहाल! इससे एक ट्रैंड शुरू हुआ। ट्रैंड नया नहीं था लेकिन लोगों को जैसे फिर याद आ गया तो फ़ैशन में आ गया। वो था— नया लड़का, नई लड़की लेकर पिक्चर बनाने का। फ़्रेश फ़ेसेज! हालाँकि यह ट्रैंड शुरू करने वाले का नाम था एस. मुकर्जी जिन्होंने बॉम्बे टॉकिज़ में 'नया लड़का'— अशोक कुमार को हीरो बनाकर इस ट्रैंड की शुरुआत की थी।

चँचल खन्ना और उसके साथ वाली हीरोइन दोनों नए थे। फ़िल्मालय स्कूल से एक्टिंग सीखे हुए। जहाँ से संजीव कुमार ने सीखा था, आशा पारेख ने सीखा था, साधना ने सीखा था।

जिस डायरेक्टर ने चँचल वाली पिक्चर डायरेक्ट की थी उसके मिज़ाज आसमान पे थे। राइटर जो मारा-मारा फिरता था— काम माँगते-माँगते— आज उससे न मालूम कितने

प्रोड्यूसर अपनी फ़िल्म लिखवाना चाहते थे। डायरेक्टर ने अपना रेट तीन गुना कर दिया था। चँचल खन्ना पहले तो कन्फ़्यूज़्ड हो गया इतनी सफलता देखकर। फिर उसने धड़ाधड़ पिक्चरें 'साइन' करनी शुरू कर दीं। साइनिंग एमाउंट आया तो वैभव बढ़ गया। सैकेंड हैंड फ़ियेट गाड़ी जो क़िस्तों में गैरेज वालों से ली थी अब उसकी जगह ऊँची क़िस्तों पर एक मर्सिडीज़ गाड़ी ली गई। गाड़ी ख़ूबसूरत थी। काली। क़रीब पाँच साल पुरानी— क्योंकि नई गाड़ी विदेश से लाना आमतौर पर आसान नहीं था। चँचल को इस गाड़ी में चलना अब ज़रूरी हो गया था। स्टार होने के अपने तक़ाज़े हैं। तब बैंक या कोई और गाड़ियों, घरों या किसी ख़रीद के लिए लोन देते नहीं थे। लोगों को पूरे पैसे देकर चीज़ ख़रीदनी पड़ती थी। लेकिन फ़िल्म इण्डस्ट्री ठहरी शो का धंधा। और शो के लिए पैसा चाहिए जो कि अच्छे-अच्छों के पास नहीं होता। फ़िल्मों में चाहे नया आया हो या पुराना हो— दिखाना तो सभी को पड़ता है कि 'हम भी कुछ हैं।' तो गाड़ियों के, घरों के, ज़ेवरात के, कपड़ों के इत्यादि फ़ाइनेंस के दलाल होते थे। ये दलाल गाड़ियों के लिए ज़्यादातर गैरेज वाले होते थे। सान्ताक्रूज़ में हवाई जहाज़ रखे पार्क के पीछे लीडो सिनेमा से पहले जो गली खार से जुड़ती थी उसमें सिर्फ़ गैरेज ही गैरेज थे और ज़्यादातर का काम स्टार्स को क़िस्तों पर गाड़ी देना था। जो ज़रा बड़ा हो जाता था वो लिकिंग रोड पर इम्पोर्टेड गाड़ी वाले एजेंट से गाड़ी लेता था।

चँचल खन्ना ने गाड़ी और मकान (फ़्लैट) का 'डाउन पैमेंट' किया। एक मर्सिडीज़ गाड़ी ले ली और कार्टर रोड पर ले लिया एक बंगला— सामने समन्दर, उसके पहले सड़क और इधर बंगला।

इस नये लड़के वाले चलन के चक्कर में जिस प्रोड्यूसर ने फ़िल्मिस्तान स्टूडियो के बाहर सलिल को मुड़-मुड़ कर देखा था और उसका स्क्रीन टैस्ट लिया था और जिसके बाद में अपना मन जाने माने स्टार को लेकर पिक्चर बनाने का बनाया था उसने अपना इरादा बदल दिया। उसको फिर उस नये लड़के की याद आ गई। स्क्रीन टैस्ट जो असिस्टेंट के कहने पर उसने ठीक नहीं समझा था अब उसने ख़ुद देखने की इच्छा ज़ाहिर की। टैस्ट देखने के लिए थियेटर बुक किया गया। शो रखा गया। प्रोड्यूसर दीवान जी और उनके डायरेक्टर रामगोपाल जी दोनों देखने आए। क़रीब सात लोगों के टैस्ट थे।

— "लड़कियाँ कम क्यों?" रामगोपाल जी ने पूछा।

— "लड़कियाँ बड़ी मिल जाएँगी जी... अच्छी हाईट-बॉडी हो लौंडिया टाँगे दिखाने को तैयार हो उसी को हीरोइन ले लेंगे। ...करना क्या है उसे... तीन गाने गाने हैं, विलेन को गालियाँ देनी हैं और हीरो के गले लगना है। आप बोलेंगे तो एक आध रेप सीन डाल देंगे।" राइटर ने अपनी बात कही।

— "सैन्सर तेरा बाप करवाएगा!?" रामगोपाल जी बोले।

फ़ाइनेंस ब्रोकर तारा भी वहीं मौजूद था। हुआ यों कि वह किसी ट्रायल के लिए आया था। जा रहा था कि दीवान जी आ गये। हालाँकि किसी ने रोका तो नहीं लेकिन तारा ने प्रोड्यूसर देखा तो वहीं खड़ा रह गया और टैस्ट देखने भी बैठ गया। कौन मना करता।

तारा के साथ उसके दो-तीन चम्चे भी थे जिन्हें वो बड़े प्यार से एसोसिएट का शॉर्ट फ़ॉर्म– 'आस्सो' बुलाता था।

तारा ने लोगों की बातें सुनीं तो फ़ौरन दाँव खेला, ''एक नई लड़की है मेड़ी निगाह में। फ़र्स्ट क्लास, फ़्रेड़ फ़ेस। कपड़े भी उताड़ेगी, सब कड़ेगी... माधुड़ी... अभी देखो हीड़ा नंदानी की नैक्स्ट पिक्चड़ कड़ ड़ही है। अभी नई है... पकर लो... पिक्चड़ ड़िलीज़ हुई तो स्टाड़ हो जाएगी। बोलो तो बात करूँ।''

दीवान साहब ख़ामोश रहे। बात गई आई हो गई।

– ''स्टार्ट!'' टैस्ट की रील शुरू हो गई।

लड़के सब अच्छे थे। लड़कियों में बात दो पर ठहरी। तय ये किया गया कि उन दो लड़कियों को ऑफ़िस में बुलाया जाय और उनका फ़ोटो सैशन करवाया जाए। तब कुछ तय किया जाए। लड़कों पर कोई सहमति नहीं थी लेकिन दीवान साहब सलिल के चेहरे के भोलेपन और उसकी मुस्कुराहट पर पहले से ही फ़िदा बैठे थे। इसलिए दीवान जी ने ताक़ीद की कि रामगोपाल जी एक बार सलिल से मिल लें।

– ''डायलॉग तो जी उससे बोले नहीं गए।''

– ''लड़का नया है... कैमरा देखकर डर गया होगा। और आप तो नये लोगों से काम लेने में मास्टर है रामगोपाल जी।''

रामगोपाल जी फूल के कुप्पा हो गए।

– ''वो तो ठीक है जी...! चलो बुलवाओ, देखते हैं।''

अब बुलवाओ कहाँ से!? लड़के ने अपना कोई अता-पता तो छोड़ा ही नहीं था। अता-पता था ही नहीं जो छोड़ता। तो अब क्या हो?

तय यह हुआ कि एक दो दिन देखो अगर वो आया तो ठीक नहीं तो दूसरे लड़के के साथ पिक्चर शुरू की जाए। कहानी पर काम आज ही से शुरू हो जाए और दस-पंद्रह दिन के भीतर शूटिंग शुरू की जाए। छः महीने में पिक्चर बना के मार्केट में रिलीज़ कर दी जाए। अप्रैल-मई में स्कूलों में गर्मियों की छुट्टियाँ होती हैं। स्टूडेन्ट्स ख़ाली होते हैं इसलिए उस ज़माने में पिक्चर रिलीज़ करना सेफ़ रहेगा। काम में बिल्कुल ढील न दी जाए। और क्योंकि नया लड़का, नई लड़की, नया संगीतकार लिया जाएगा इसलिए पैसा भी कोई ख़ास ख़र्च नहीं होगा।

उस रात को स्क्रीन टैस्ट देखने के बाद थियेटर से निकलते समय दीवान जी एकदम रिलैक्स्ड थे, रामगोपाल जी को पिक्चर शुरू होने की उम्मीद हो गई थी और रामगोपाल जी के राइटर को महीनों बेकार रहने के बाद आमदनी दिखाई देने लगी थी।

अब सवाल यह था कि प्रोडक्शन वाले सलिल को ढूँढे कहाँ।

– ''तू दुनिया में सुई तक ढूँढ सकता है, इस लड़के को नईं ढूँढ सकता?'' दीवान जी ने प्रोडक्शन मैनेजर से कहा।

– ढूँढ क्यों नई सकता सर! ढूँढ लावेंगे सर!''

– ''इधर ही घूमता होगा,'' दीवान जी ने समझाया, ''फ़िल्म का कीड़ा काट खाए तो फिर आदमी स्टूडियो के चक्कर ही काटेगा और किधर जाएगा!''

– ''बात तो ठीक हैगी... हैं हैं हैं हैं...!''

– ''तू फ़ोटो ले जा... किसी दूसरे प्रोडक्शन में दिखा के पूछ। लौंडा मिला तो ठीक नहीं तो बदल दो साले को, दूसरा ले लो! है न...!''

– ''बिल्कुल ठीक है जी!'' रामगोपाल जी ने प्रोड्यूसर की हाँ में हाँ मिलाई। किस बात पर हाँ में हाँ मिलाई इसका एहसास उन्हें ख़ुद नहीं था।

प्रोडक्शन मैनेजर ने कैमरा अटेन्डेन्ट से पूछा, ''लड़का कौन था?''

– ''क्या पता?'' उसने बग़ैर कुछ सोचे टका-सा जवाब दे दिया। कैमरामैन से पूछने की हिम्मत नहीं हुई नहीं तो वो डांट देता– ''हम क्या एक्टर्स का हिसाब रखते हैं!?''

सब की अपनी-अपनी ठसक थी। शाम तक सर पर हाथ रखे प्रोडक्शन वाले ने अपने एक स्पॉट ब्वॉय से यूं ही बेख़्याली में ज़िक्र कर दिया– ''की कराँ यार!... अरे मुण्डा कित्थों लावाँ!?''

स्पॉट ब्वॉय रज़ाक के साथ काम कर चुका था और उसने सलिल को रज़ाक के साथ देखा था। बोला, ''मैं बताऊँ?''

– ''तो साले दस्स! पुच्छया किस वास्ते तै नूँ?''

रज़ाक का नाम तो मिला लेकिन रज़ाक इतना छोटा असिस्टैंट था कि उसका पता लगाने के लिए अब ये ढूँढो कि वह किस प्रोडक्शन में है या उसका प्रोडक्शन मैनेजर कौन है? मतजब– ढूँढना बरक़रार!

– ''कैन्टीन नू पुच्छ।''

कैन्टीन वाले ने प्रॉडक्शन का नाम बताया। उसे याद था क्योंकि उस पर उसके चार सौ पचास रुपये उधार थे। फ़िल्म वाले बड़े-बड़े बिल तो मजबूरी में दे देते हैं। छोटे-छोटे बिल बिना रूलाये नहीं देते। या फिर बिलों में से कुछ रक़म काट लेना अक़्लमंदी समझते हैं। ये नहीं समझते कि जिसने बिल बनाया है वो इनकी नीयत समझता है और उसने सही एमाउंट से ज़्यादा का ही बिल बनाया होता है ताकि अगर बिल कटे तो भी उनका नुक़सान न हो। फ़िल्मिस्तान की कैन्टीन का बिल था पाँच हजार चार सौ पचास। उसमें से प्रोड्यूसर ने पाँच हजार के लिए तो हाँ कर दी लेकिन चार सौ पचास काट दिये।

– ''अबे वो चँचल खन्ना वाली फ़िल्म का क्या?''

– ''हाँ हाँ... वही तो... स्टेज टू में शूट हुई थी।''

फ़ौरन पता लग गया।

प्रोडक्शन कम्पनी की फ़िल्म हिट हो गयी थी इसलिए सब खुशियाँ मना रहे थे और ऐश कर रहे थे। सब वर्कर्स और स्टाफ़ को बोनस एनाउंस हुआ था– मिला नहीं था वो और बात है। प्रोड्यूसर खण्डाला में बैठा अपनी नई फ़िल्म की कहानी सुन रहा था। दफ़्तर में रोल माँगने वाले लड़के-लड़कियों की लाइन लगी थी। ऑफ़िस आने वालों के नाम पर सिर्फ़ सफ़ाई वाला और रिसेप्शनिस्ट ही रेगुलर थे। बाकी सब आते-जाते रहते थे।

— रज़ाक को मैसेज दो दिन बाद मिला।

— "अबे ओ चूतिये! तेरे हीरो बनने के दिन आ गएले।" रज़ाक ने सलिल की पीठ पर धौल जमाते हुए कहा।

रज़ाक ने अपनी ही 'खोली' में सलिल को रहने के लिए जगह का बन्दोबस्त कर दिया था। और अपने ही प्रोडक्शन में स्पॉट ब्वॉय का काम भी दिलवा दिया था। दो एक बार बेमतलब के रोलों में कैमरे के सामने भी खड़ा करवा दिया था। इससे सलिल का 'कैमरा-कॉन्फ़िडेंस' भी बढ़ गया था और ख़र्च भी चल जाता था। रज़ाक उसके लिए एकदम भगवान बनकर आया था।

— "क्या हुआ?" सलिल ने पूछा।

— "तेरा कॉल आया बेटे!"

जब रज़ाक ने पूरी बात बताई तो पहले तो सलिल को विश्वास नहीं हुआ लेकिन धीरे-धीरे जब ख़बर ज़हन में उतरी तो उसकी ख़ुशी का ठिकाना न रहा।

— "देख!" रज़ाक ने सलिल के हाथ पर हाथ रखकर कहा, "तू अगर हीरो बन गया तो मुझे प्रोड्यूसर बनाएगा और अगर पहले मैं प्रोड्यूसर बना तो मैं तुझे हीरो लेगा।"

— "ये भी कोई कहने की बात है।"

— "ये फ़िल्म इण्डस्ट्री है बाबू। यहाँ कब आदमी बदल जाए क्या पता!"

— "पहले देखने तो दे यार कि बुलाया क्यों हैं। हो सकता है कि उन्हें किसी स्पॉट ब्वॉय की ज़रूरत हो। तब फिर सारे अपने ख़्वाब हो गए 'डव्बा'!"

दूसरे दिन धोबी से एक क़मीस माँगी गई और रज़ाक और सलिल पहुँचे फ़िल्मिस्तान। आज जब दरबान ने रोका तो सलिल ने रूतबे से ऑफ़िस का नाम लिया और कहा— 'बुलाया है'। जिस अंदाज़ से ये बात कही गई थी उस वजह से दरबान की उन्हें रोकने की हिम्मत नहीं पड़ी।

स्पॉट ब्वॉय ने सलिल को देखा तो भागा अन्दर।

— "सर... सर... वो आ गया।"

— "कोण वे?" प्रोडक्शन मैनेजर ने सिगरेट की राख झाड़ते हुए इत्मीनान से पूछा।

— "वो... नया लड़का।"

मैनेजर ने सिगरेट झटके से फेंक दी और फ़ौरन उठ खड़ा हुआ, "कित्थे?"। बाहर निकला। फिर सलिल से उसने गर्मजोशी से हाथ मिलाया।

— "अरे सर! कित्ता ढुँढ्या आप नू यार!"

फिर दीवान जी की केबिन में ले जाकर बोला, "लो जी आप बोले ढूँढ के लाओ ... ढूँढ लिया जी... ले आए हम... लो जी अपणा हीरो...! हँ हँ हँ हँ...!"

दीवान जी ने देखा तो सलिल को अन्दर आने का इशारा किया। बैठाया।

सलिल को कुछ समझ में नहीं आ रहा था। वह कहीं सपना तो नहीं देख रहा है। रामगोपाल जी के आने का वक़्त हो चला था। वो दाख़िल हुए, "दीवान जी, लड़का मिला?" दीवान जी ने रामगोपाल जी से सलिल का तार्रुफ़ करवाया।

— "देखो भई आपका तजुर्बा तो कुछ है नहीं इसलिए ये समझ लो कि मेहनत बहुत करनी पड़ेगी।" तमाम तरह की हिदायतें दी गईं। दीवान जी ने पूछा, "तुमने अपना पता नहीं छोड़ा। हम कहाँ ढूँढते? तुम रहते कहाँ हो?"

अब सलिल क्या जवाब दे?!

— "जी यहीं आसपास।"

— "आसपास याने?"

— "एक दोस्त के साथ।"

— "हूँ ऽ...।" दीवान जी ने ख़ामोशी से सर हिलाया। वो सलिल की हक़ीक़त समझ गए। पुराने प्रोड्यूसर थे। उन्होंने ऐसे न जाने कितने 'सलिल' अपनी प्रोड्यूसरी में देखे थे। उन्होंने प्रोडक्शन मैनेजर किशोर को आवाज़ लगाई— "अरे किशोर!"

— "जी सर!" किशोर आया।

— "देख इसके रहने का बन्दोबस्त कर... एक रूम इन्हानू दिला। शूटिंग शुरू होएगी लोग पूछेंगे कि कित्थे रैता है हीरो, तो हमारी नाक कट जाएगी। होर सुण... इन्हानू एक टेलीफ़ोन वाला रूम दिलवा...! किराया जिन्ना कम हो सके।"

— "ठीक है जी!"

बहरहाल! सारे कुलावे बैठ गए। मशीन में रवानी आ गई। ज़िन्दगी पटरी पर आई-सी लगने लगी।

7

फ़िल्मिस्तान स्टूडियो के मेकअप रूम नं. पाँच में दरवाज़े पर दस्तक हुई– ''आ जाऊँ– सर!?''

स्पॉट ब्वॉय था। नाश्ता लाया था। ''नाश्ता सर!'' शूटिंग का पहला दिन था। नौ बजे की शिफ़्ट थी। सलिल मेकअप रूम में मेकअप करवा रहा था। वो हीरो था और उसके लिए एक स्पॉट ब्वॉय नाश्ता लिए खड़ा था। पहले तो सलिल को यक़ीन नहीं हुआ कि यह नाश्ता उसके लिए है। उसने मेकअप मैन की तरफ़ इशारा किया। लेकिन मेकअप मैन ने बाइज़्ज़त कहा, ''नहीं! आप सर!'' फिर नाश्ते की तरफ़ देख कर उसने कहा, ''रख दो... मेकअप के बाद करता हूँ।''

मेकअप में क़रीब आधा घंटा लगा। थोड़ी और देर कैमरा सैट करने और लाइटिंग में लगी। शॉट शुरू होते-होते साढ़े दस बज गए थे। अस्पताल का सीन था। जनरल वार्ड का– लगा लगाया सैट स्टूडियो की पहली मंजिल पर था– उसी में।

हरी-हरी चादरें, सफ़ेद रंगे लोहे वाले पलंग पर बिछी थी। कुछ मरीज़ बिस्तरों पर लेटे थे। शीशा जड़ी सफ़ेद पुती खिड़कियाँ बन्द थीं। शॉट ये था कि सलिल क़मीस पैंट पहने, डॉक्टर का सफ़ेद गाउन पहने गले में आला डाले घड़ी देखता हुआ वार्ड में दाख़िल होता है। एक मरीज़ के पास लगा हुआ चार्ट उठा कर देखता है। फिर उस मरीज़ की नब्ज़ देखता है और साथ में आई नर्स से कुछ कहता है। नर्स की तरफ़ मुँह मोड़ने से शॉट कटने वाला था इसलिए साउंड उसमें रिकॉर्ड होती। यह शॉट साइलेंट था।

मरीज़ों की जगह कुछ एक्स्ट्रा (जिन्हें इन दिनों जूनियर आर्टिस्ट कहते हैं) बुलाए और लिटाए गए थे। वे लोग पचास से पचहत्तर रुपये और लंच पर आते थे। कपड़े अपने लाते थे और लाइटिंग से लगाकर 'टेक' तक सैट पर रहते थे। इनमें ज़्यादातर वो लोग होते जो आते तो हीरो / हीरोइन बनने थे लेकिन बन नहीं पाते थे। साइड रोल तक भी नहीं पहुँच पाते थे। लेकिन अच्छे दिनों की उम्मीद के ख़्वाब अलबत्ता देखते रहते थे। महमूद और मुमताज़ भी तो कभी एक्स्ट्रा थे! वे कैसे, हीरो, हीरोइन बन गए। हमारे भी दिन बदलेंगे। लेकिन ज़्यादातर के दिन कभी बदले ही नहीं। शॉट की लाइटिंग के लिए हीरो या हीरोइन को नहीं बुलाया जाता था। उनकी जगह किसी को भी खड़ा करके उनके लिए लाइटिंग की जाती। इसलिए सलिल को तब बुलाया गया जब सब कुछ रेडी हो गया।

– ''रेडी सर! आर्टिस्ट को बुलाओ।'' कैमरा वालों ने कहा। रामगोपाल जी ने असिस्टेंट से कहा, ''सलिल जी को बुलाओ।''

सलिल से सलिल जी सुनने में उसे शुरू में तो अजीब लगा लेकिन फिर अच्छा लगने लगा। और दो-तीन दिन बाद जब रज़ाक एक दिन उससे मिलने सैट पर आया और उसने जब उसे सिर्फ़ सलिल कह कर बुलाया तो उसे अच्छा नहीं लगा। और इसीलिए शायद सलिल ने रज़ाक को अपना सैक्रेटरी रखना भी ठीक नहीं समझा। रज़ाक तो सलिल के बारे में उसकी पिछली ज़िन्दगी और मुफ़लिसी के बारे में बहुत तफ़सील से जानकारी रखता था। ऐसे आदमी को जो अपने बारे में ज़्यादा जानता हो दूर ही रखना बेहतर है।

हालाँकि सैक्रेटरी रखना ज़रूरी हो गया था। प्रेस में इन्टर्व्यू छपने लगे थे। तस्वीरें खिचने लगीं थीं। इधर-उधर के कुछ प्रोड्यूसर्स भी कहानी सुनाने आने लगे थे। दीवान साहब की पिक्चर धड़ाधड़ आगे बढ़ रही थी और न्यूज़ बन रही थी। लड़कियाँ तस्वीर देख-देख कर ग़श खा रही थीं और फ़िल्म की हीरोइन मौक़ा ब मौक़ा सीन दर सीन गले लग-लग के गाना गा रही थी।

सलिल का हौसला बुलन्द था। तबियत आसमान छू रही थी और क़िस्मत चमक उठी थी।

– ''सर नमस्कार!'' थैला लटकाए एक पत्रकार सामने हाथ जोड़े खड़ा था।

– ''जी?'' सलिल ने सर उठाकर पूछा।

– ''सर मैं मधुमीता पत्रिका से हूँ। सम्पादक जी ने कहा आपका इन्टर्व्यू कर लाऊँ।''

– ''आप बैठिये... मैं शॉट दे आऊँ फिर आपसे इत्मीनान से बात करते हैं!''

– ''ठीक है सर!''

फिर सलिल ने स्पॉट ब्वॉय को बुलाकर पत्रकार के लिए चाय लाने को कहा और शॉट देने चला गया।

– ''फुल लाइट्स!'' कैमरा वाला चिल्लाया।

रामगोपाल जी जो हीरोइन को अपने बग़ल में दबाए ख़रामा-ख़रामा सैट पर 'स्पॉट' पर आ रहे थे अब उसके कन्धे से हाथ हटाकर सीधे आ गए। शॉट समझाया गया। लड़के को देखकर लड़की को अपनी बेगुनाही का डायलॉग बोलना था और उसके जवाब में हीरो को कहना कुछ नहीं था बस आँखों में पानी (याने ग्लीसरीन) भर कर हीरोइन को मोहब्बत से गले लगा लेना था। फिर कुछ देर वैसे ही खड़े रहना था।

अलग-अलग शॉट्स में चेहरे के रिएक्शन देने थे ताकि स्क्रीन पर जब ये सीन आए तो उस पर गाने की लाइनें ओवरलैप की जायें और सीन के 'एफ़ेक्ट' को सवा किया जा सके। काम लम्बा चला। दो तीन बार हीरोइन डायलॉग बीच में भूल गई इसलिए कट करना पड़ा। फिर सलिल की पोज़ीशन ठीक नहीं थी इसलिए कैमरा जब ज़ूम करता तो उसका चेहरा ठीक नहीं दिख रहा था इसलिए कट करना पड़ा। हालाँकि ग़ल्ती सलिल की थी, वह अपने 'मार्क' से हट गया था। लेकिन गाली पड़ी असिस्टेंट को। ''ठीक से मार्क

भी नहीं दे सकता तू!'' वह बेचारा जानता था कि ग़ल्ती उसकी नहीं थी लेकिन काम तो करना था इसलिए वह डांट पी गया। हालाँकि सलिल भी जानता था कि ग़ल्ती उसकी खुद की थी और वह यह बात क़ुबूल करके असिस्टैंट को डांट से बचा सकता था लेकिन उसने ख़ामोश रहना ही शायद ठीक समझा।

एक बार कैमरा ठीक से ज़ूम नहीं हुआ इसलिए कैमरामैन को कट करना पड़ा। फिर उसने अपने असिस्टैंट को ज़ोर से लताड़ लगाई, ''ज़ूम कर ठीक से... इतना भी नहीं कर सकते... चले आते हैं कैमरामैन बनने!'' लेकिन दरअसल बात कुछ और थी। हुआ ये कि जब तीन बार हीरोइन के डायलॉग भूल जाने की वजह से और दो बार सलिल की ग़लत पोज़ीशन की वजह से और एक बार रामगोपाल के ग़ल्ती से 'कट' बोलने की वजह से री-टेक पे री-टेक हुए तो कैमरामैन को अपनी अहमियत याद आ गई और उसने जानबूझ कर ठीक ज़ूम न करते हुए शॉट 'कट' कर दिया। बाकी लोग ग़ल्ती करते रहें और कैमरा वाला चुपचाप टेक पे टेक लिए जाए! सबकी ग़ल्तियाँ बरदाश्त किये जाए। वाह ... वाह! तुम्हारा ख़ून ख़ून और हमारा ख़ून पानी! एक बार तो कम से कम हमारी अहमियत भी समझो! इसलिए कैमरामैन की वजह से भी एक बार शॉट नहीं हो सका। आठ टेक के बाद जब शॉट ओ. के. हुआ तो बहुत अच्छा हुआ।

रामगोपाल जी ने हीरो, हीरोइन को बधाई दी। सलिल और हीरोइन एक दूसरे को बधाई देने गले लगे और शोर हुआ— ''नैक्स्ट!'' सारी यूनिट दूसरे शॉट के सैट अप पर लग गई।

सलिल जब अपने मेकअप रूम में वापस आया तो काफ़ी देर हो चुकी थी। पत्रकार अभी भी बैठा था। एक माँ अपनी बेटी को लेकर सलिल से मिलवाने के लिए मुन्तज़िर थी— इसलिए कि अगली फ़िल्म में सलिल उस लड़की को हीरोइन के लिए तज़वीज़ करे। हालाँकि पहले पहल सलिल को यह सब अचम्भा और ख़्वाब लगता था। लेकिन अब— दो महीने बाद— अच्छा भी लगने लगा और इसका नशा भी आने लगा।

सलिल दाख़िल हुआ तो हीरोइन बनने की शौक़ीन लड़की ने फ़ौरन अपना हाथ बढ़ाकर उससे मिलाया और उसकी माँ ने बड़ी शाइस्तगी से झुककर नमस्ते की। पत्रकार उठकर खड़ा हो गया। हालाँकि पत्रकार ऊब गया था। मगर इन्तज़ार के अलावा वह और कर भी क्या सकता था। प्रोड्यूसर दीवान साहब ने मैगज़ीन के मालिक को फ़ोन करके ताक़ीद की थी कि सलिल का एक अच्छा-सा इन्टर्व्यू छापा जाए। आख़िर फ़िल्म बना रहे है, नया हीरो है, नई हीरोइन है तो लोगों को पता तो चलना चाहिये! और अख़बार और पत्रिका ही तो थे जो लोगों तक ख़बर पहुँचाते थे। मैगज़ीन वालों को भी पेज भरने और रंगीन तस्वीरें छापने का मौक़ा मिलेगा और वे मैगज़ीन ये कहकर बेचेंगे कि देखो इस नये जोड़े की ख़बर सबसे पहले हमने छापी। लोगों में इससे मैगज़ीन के प्रति एक रूझान पैदा होगा और आइंदा भी वे इस मैगज़ीन से नई नई ख़बरों की उम्मीद रखेंगे। इससे मैगज़ीन की बिक्री भी होगी और बिक्री होगी तो उसमें इश्तिहार भी मिलेंगे।

इन्टर्व्यू शुरू हुआ तो तक़रीबन रात होने लगी थी।

— ''कल करें!'' सलिल के सैक्रेटरी ने कहा।

सलिल ने सैक्रटरी की तरफ़ सवालिया नज़रों से देखा। लेकिन सैक्रेटरी दीवान साहब ने दिलवाया था। फ़िल्म इण्डस्ट्री का पुराना तर्जुबेकार घाघ था। किसी एक हीरो का पहले भी रह चुका था। इसलिए सलिल कुछ बोल तो नहीं पाया लेकिन उसकी समझ में ये नहीं आया कि अच्छा ख़ासा इन्टर्व्यू मुल्तवी क्यों करवाया गया।

— ''जैसा आप कहें सर! वैसे भी मैं एपॉइंटमैंट लिए बग़ैर ही आ धमका। हँ हँ हँ हँ...!'' पत्रकार ने फ़ीकी हँसी हँसकर कहा।

— ''कल शाम छः बजे... सर के घर पे।''

— ''ठीक है जी।''

जब सब चले गए तो सैक्रेटरी ने समझाया—

''सर! आप नये हैं। इन पत्रकारों को ज़रा पटा कर रखिये... ये बहुत बदमाश लोग हैं... कुछ का कुछ लिख देते हैं और ये लिख देते हैं तो लोग मान लेते हैं। इस समय आपकी इमेज का सवाल है। इनको कल घर पर बुलाते हैं। दो एक ड्रिंक करवाते हैं और फिर जो आप चाहेंगे वही ये लिखेंगे।''

अब सलिल को जुहू तारा रोड पर लीडो सिनेमा के पीछे वन बैडरूम का फ़्लैट और एक फ़ियेट गाड़ी दिलवा दी गई थी। ये सब हालाँकि दीवान साहब की कम्पनी के नाम था लेकिन दुनिया को इस सब का क्या पता! हाँ पैसा एक नहीं मिलता था सलिल को, खर्चे मिल जाते थे। उसके साथ तीन साल का कॉन्टैक्ट भी कर लिया गया था जिसमें लिखा था कि तीन साल तक वह किसी दूसरे प्रोड्यूसर की कोई फ़िल्म नहीं करेगा और अगर करेगा तो उसे अपने उस पारिश्रमिक का पचास फ़ीसदी दीवान साहब को देना पड़ेगा। वैसे भी सबको मालूम था कि इस पिक्चर के रिलीज़ होने और हिट होने तक कोई उसके साथ फ़िल्म करने वाला नहीं है। सो छः महीने-साल भर तो उसी में निकल जाएगा। लेकिन मामला तीसरे महीने से ही उल्टा होने लगा। प्रेस में जिस तरह से इस फ़िल्म की तारीफ़ छपने लगी और इण्डस्ट्री में जिस तरह सलिल के काम की तारीफ़ फ़ैलने लगी दूसरे प्रोड्यूसर्स ने सोचा कि लड़का स्टार मैटीरियल है और पिक्चर रिलीज़ होगी तो 'हॉट' हो जाएगा इसलिए अभी से साइन करके रख लो। सो धीरे-धीरे लोगों ने बात बढ़ाना शुरू किया। हालाँकि सैक्रेटरी श्याम जी दीवान साहब का रखवाया हुआ था और उसका फ़र्ज़ था कि सलिल की हर बात दीवान जी तक पहुँचाता लेकिन श्याम जी भी आदमी था और वक़्त के तमाम थपेड़े खाए हुए था। उसे सलिल की तरक़्क़ी से फ़ायदा था। सलिल जो भी कमाता उसका पन्द्रह फ़ीसदी सैक्रेटरी होने के नाते उसकी जेब में जाता। इसलिए श्याम जी ने इक़रारनामें और दीवान जी की परवाह किये बग़ैर सलिल से दूसरे प्रोड्यूसर्स की पिक्चरें साइन करवानी शुरू कर दीं। डेट्स की बात आती तो गोल कर जाता। कह देता, ''आप शूटिंग फ़िक्स कीजिए मैं डेट्स दिलवा दूँगा।''

प्रोड्यूसर्स साइनिंग एमाउंट तो दे देते थे लेकिन चाँस नहीं लेना चाहते थे। इसलिए हर प्रोड्यूसर इस पिक्चर के रिलीज़ तक रूकना चाहता था। देखें तो कि इसका क्या हश्र

होता है। हिट हो गई तो हीरो साहन किया रखा है। फ़्लॉप हो गई तो सिर्फ़ साइनिंग एमाउंट से ढीले हुए। सब अपने-अपने मोहरे लगाए बैठे थे।

पत्रकार जब पूछते कि आप फ़िल्मों में कैसे आए तो सलिल बड़ी सफ़ाई से समझा देता कि यह उसका शुरू से सपना था और ये कि उसके घर वालों ने भी इसमें उसका साथ दिया। जब उससे यहाँ तक पहुँचने की स्ट्रगल के बारे में पूछा ज़ाता तो वह हर बात से साफ़ मुकर जाता और कहता कि उसे कोई ख़ास स्ट्रगल नहीं करनी पड़ी। हाँ दीवान साहब की शान में हर बार वो कुछ न कुछ कहना नहीं छोड़ता! जैसे कि वो हीरा पहचानते हैं ... वग़ैरह वग़ैरह! लेकिन पत्रकार तो पत्रकार है। घाट-घाट का पानी पिये हुए। एक ने पूछ ही लिया, ''आप वर्सोवा के पान वाले के यहाँ पेवमेंट पर सोया करते थे?'' उसी समय श्याम जी ने हाथ हिलाकर पत्रकार को क़रीब क़रीब डांट दिया।

— ''देखिये, बेकार के सवाल मत कीजिए। ऐसी बातें करके स्टार की इमेज ख़राब होती है। ऐसे सवाल पूछना बन्द कीजिए... अब पिक्चर रिलीज़ पर है उसके लिए मदद कीजिए... ये लीजिए... सोडा और डालूँ?''

श्याम जी ने ग्लास में व्हिस्की डालते हुए पूछा। पत्रकार चुप हो गया। लेकिन फ़िल्मी पत्रकार किसी एक स्टार के पास थोड़े ही जाता है। वो तो सब के पास घूमता रहता है। सबका खाता-पीता रहता है। सो वह यूसुफ़ के पास भी जाता था और चँचल खन्ना के पास भी तथा और लोगों के पास भी। यूसुफ़ ने उसे अपने यहाँ बावर्ची होने और किसी कम्पनी में स्पॉट ब्वॉय होने के क़िस्से सुनाए। चँचल खन्ना को एक नया सितारा उभरते दिखने से ज़ाहिर है जलन हो रही थी इसलिए उसने पता चलाकर लिखवाया कि ये तो किसी छोटे शहर से भागा हुआ लड़का है। वग़ैरह-वग़ैरह...! लेकिन जब तक ये ख़बरें इधर-उधर आती रहीं और छपती रहीं तब तक पिक्चर भी रेडी होती रही। और पिक्चर अच्छी बनी हो तो कोई माई का लाल उसकी तारीफ़ रोक नहीं सकता। रामगोपाल जी ने मेहनत की थी क्योंकि उनका कैरियर भी डांवाडोल था और उन्हें एक हिट की सख़्त ज़रूरत थी।

— ''सुना है तुम बाहर की फ़िल्में साइन करवा रहे हो?'' दीवान जी ने श्याम जी से एक दिन पूछा।

— ''बाहर की क्या सर... प्रोड्यूसर आते हैं पैर पकड़कर बैठ जाते हैं। नोटों की गड्डी लेकर बैठ जाते हैं... मैं क्या करूँ सर! मैं भी कह देता हूँ कि जाओ अभी सलिल जी कॉन्ट्रेक्ट में हैं और अभी बाहर की पिक्चर नहीं कर सकते लेकिन मानते कहाँ हैं?! साइनिंग फिर भी ज़बरदस्ती दे जाते हैं।''

— ''कितनी साइन करवा दीं?''

— ''अरे कहाँ सर... मुश्किल से दो-तीन... वो भी जब गले पड़ गए तब।''

— ''हूँ ऽ...। तुझे मैंने रखवाया था कि ज़रा नज़र रख माहौल पर लेकिन तू भी उस्ताद निकला।''

— ''अरे नहीं दिवान जी, सर!'' श्याम जी ने दीवान जी के पैर पकड़ लिए, ''मैं तो पूरी तरह आपका आदमी हूँ सर। जान दे दूँगा आपके लिए लेकिन दग़ा नहीं करूँगा, सर।''

दीवान जी ने सलिल को बुलवाया।

— ''जी सर!?''

— ''बेटा... एक पिक्चर और करता हूँ तेरे साथ। ये कॉन्ट्रेक्ट है, साइन कर दे।''

सलिल ने झुक कर दीवान जी के पैर छुए।

— ''पढ़ ले... पढ़ ले!''

— ''पढ़ना क्या सर! जहाँ बोलिये साइन कर दूँ।''

— ''और देख! हीरोइन बड़ी है। आशा देवी!''

— ''आशा देवी!!'' सलिल उचक गया। अचम्भे में। आशा देवी उस ज़माने की बहुत बड़ी स्टार मानी जाने वाली हीरोइन थीं।

— ''हाँ! अच्छा पेयरिंग रहेगा। नौजवान लड़का और ज़रा-सी बड़ी हीरोइन। कहानी पे काम चल रहा है। ये पिक्चर रिलीज़ होने से पहले ही उसकी शूटिंग शुरू कर दूँगा।''

— ''ठीक है सर!''

ये दीवान जी का दूसरा पैंतरा था। इस पिक्चर के रिलीज़ के पहले ही दूसरी शुरू करेंगे तो डिस्ट्रीब्यूटर से पैसा उठा लेंगे। खुदा न ख़्वास्ता अगर ये पिक्चर डब्बा हो गई तो दूसरी कौन उठायेगा।

रिलीज़ की पब्लिसिटी प्लान की गई। शहर-शहर में ताँगों पर दोनों तरफ़ पोस्टर लगवाकर गाने बजवाए गए। दीवारों-दीवारों पोस्टर्स लगवाए गए।

फ़िल्मी पत्रिकाएँ तो सलिल के घर वाले पढ़ते नहीं थे। ललितपुर के लौंडे इधर-उधर देख लेते थे सो उनकी हिम्मत नहीं थी कि सलिल के घर वालों से इसका ज़िक्र करें। लेकिन जब ताँगों पर दोनों तरफ़ पोस्टर पर छपी सलिल की तस्वीरें और उसकी फ़िल्म के लाउडस्पीकर पर बजते गाने गली-गली निकले और फ़िल्म की पब्लिसिटी होने लगी तब घर वालों को सलिल की हक़ीक़त नज़र आई। पहले तो सोचा गया कि 'होगा कोई'। फिर लगा हमशक्ल होगा लेकिन फिर शहर के लड़कों ने भी पुष्टि कर दी तो बात समझ में आई। माँ ने खुशी ज़ाहिर की और भगवान का शुक्र अदा किया। बहन को लगा कि काश वो भी हीरोइन बन पाती। पिता जी ने गर्दन नीची कर ली।

बहरहाल! अब सवाल ये था कि अपना लड़का घर वापस कैसे लाया जाए।

– "बम्बई में कहाँ ढूढेंगे? इत्ता बड़ा शहर है।" पिता ने कहा।

– "फ़िल्म वाले इत्ते से तो हैं।" माँ चहकी।

– "हाँ ऽ...! फ़िल्म वाले बंबई में भौत है अम्माँ।" बहन ने कहा जैसे वह सब जानती थी।

घर वाले सोच ही रहे थे कि ललितपुर भर में लड़कों ने शोर मचा दिया कि इस फ़िल्म का हीरो 'अपने यहाँ का है'। ताँगा आगे-आगे गाना बजाता, उसमें बैठा आदमी फ़िल्म की मुनादी करता बढ़ता जाता और शहर के लड़के पीछे-पीछे हुजूम बनाए साथ-साथ चलते जाते। जिस थियेटर में फ़िल्म लगने वाली थी उसकी पूरी तरह एडवांस बुकिंग हो चुकी थी। झाँसी पास था, वहाँ भी ख़बर पहुँच गई। वहाँ पिक्चर 'लक्ष्मी' टॉकीज़ में लगने वाली थी। वहाँ भी हाउस फुल हो गई। हालाँकि दीवान साहब के डिस्ट्रीब्यूटर ने जानबूझ कर यू. पी., बिहार में ज़्यादा प्रिन्ट्स रिलीज़ किये थे। इस पब्लिसिटी के साथ कि 'आप की फ़िल्म– आपका हीरो।' लेकिन यह गणित तो धन्धे का था इसमें लोगों का क्या सरोकार।

– "आपका लड़का तो स्टार बन गया भाई।" सलिल के पिता श्यामा प्साद वर्मा से उनके एक साथी ने कहा।

– "क्यों शरमिन्दा करते हैं।"

– "अरे उसका नाम दुनिया में फ़ैल रहा है। उसकी तस्वीरें लग रही हैं। लड़के उसके नाम के दीवाने हुए जा रहे हैं और आप कह रहे हैं कि शरमिन्दा क्यों करते हैं।"

– "आपका लड़का नचनियाँ-गवनियाँ होता तो आप क्या भगवान का शुक्र मनाते!?"

– "बिल्कुल।... छोड़ो यार ये दक़ियानूसी बात। दुनिया बदल रही है। यही है आजकल। वक़्त के साथ नहीं चलोगे तो पीछे छोड़ दिये जाओगे।"

– "तो छोड़ तो गए थे महाराज। भाग गया था हरामी... और वहाँ जा के क्या किया पता नहीं लेकिन अब ये गुल खिलाए।"

– "वर्मा जी... वक़्त को समझो। हमारी सोच पुरानी हो गई। लड़कों की क्या बात करते हैं आजकल लड़कियाँ भी भाग रही है। सबकी अपनी-अपनी मर्ज़ी है। सबको स्वतंत्रता है। अब अगर सलिल आ के खड़ा हो जाए सामने तो क्या मुँह फेर लोगे या घर में न घुसने दोगे?... और किया भी तो कितने दिन? आख़िर लड़का है एक दिन तो समझौता करना पड़ेगा... तो अभी ही कर लो! तुरन्त दान महा कल्यान!"

हालाँकि श्यामा प्रसाद बेहद ज़िद्दी क़िस्म के शख़्स थे लेकिन इस बात ने उन पर कुछ असर तो ज़रूर किया। वे सोचने पर कुछ तो मजबूर लगे। ये सब सुनकर एकदम चुपचाप नज़र गड़ाए आकाश तकते रहे। उनका ध्यान जब टूटा जब सलिल की फ़िल्म का गाना 'आजा आजा दिल दे दे... जान ले ले!' अचानक कहीं ज़ोर-ज़ोर से बजना शुरू हो गया।

श्यामा प्रसाद ने 'डिसगस्ट' में सर हिलाया और वहाँ से फ़ौरन घर की तरफ़ चल दिये।

सामने से लल्लन शर्मा– जो उसी मोहल्ले में रहते थे और राजनीति में दख़ल रखते थे– चले आ रहे थे। लल्लन ने आते ही वर्मा जी के पैर पकड़ लिए।

– "भाई साहब! प्रणाम!"

श्याम प्रसाद को बहुत ताज्जुब भी हुआ और यकायक वे हतप्रभ भी हो गए। क्योंकि अभी पिछले ही दिनों की तो बात है जब लल्लन ने उनसे ऊँची-ऊँची आवाज़ में अच्छा ख़ासा झगड़ा किया था। हुआ यह था कि गर्मियों के दिन थे, दुपहरिया का वक़्त। आग बरस रही थी। सब अपने-अपने घरों में खिड़कियों पर परदे लगाए आराम कर रहे थे। झपकियाँ ले रहे थे। सड़क श्यामा प्रसाद के घर के आगे जाकर संकरी होकर गली-सी हो जाती थी। लल्लन अपने घर में फ़र्श लगवा रहे थे सो उनके यहाँ पत्थर की सिलें मँगवाई गई थीं। बैलगाड़ियाँ क्योंकि आगे जा नहीं सकती थीं इसलिए श्यामा प्रसाद के घर के सामने वो सिलें उतरवा दी गई थीं। वहीं कारीगर बैठकर उन्हें छैनी से तराशते और फिर उठाकर लल्लन के घर ले जाते। कारीगरों का काम पिछले पन्द्रह दिनों से सुबह नौ से शाम छः बजे तक चलता था। कुछ दिन तो बर्दाश्त किया गया। लेकिन रोज़ाना दोपहर में यह बर्दाश्त से बाहर होने लगा। किसी की नींद न लगने दे। ज़रा देर भी चैन न मिलने दे। सो जब बहुत हो गया तो एक दिन श्यामा प्रसाद घर से बाहर निकले और उन्होंने कारीगरों को काम दोपहर में बन्द करने को कहा। लल्लन को ख़बर लगी तो वो फ़ौरन लड़ाई के मूड में चिल्लाता हुआ वर्मा जी के सामने आ खड़ा हुआ। श्यामा प्रसाद बुज़ुर्ग भी थे और लड़का भाग जाने के कारण अपने मन में दुखी भी थे और पैसे से भी कुछ तंग रहते थे, इसलिए कच्चे पड़ गए और उन्हें ही आख़िर कहना पड़ा, "माफ़ करो भाई... ग़ल्ती हो गई... आप करो जो करना है।"

किसी इज़्ज़तदार शख़्स को सही होते हुए भी किसी ग़लत शख़्स से अपनी हार माननी पड़े तो जैसा लगता है वैसा श्यामा प्रसाद को भी लगा। लेकिन लल्लन सक्षम था, नेता था– और आज़ाद भारत का नेता बादशाह होता है– इसलिए ये ज़हर उन्हें पीना पड़ा। और अब वही लल्लन सामने से आकर वर्मा जी के पाँव छू रहा है! तो अचम्भा तो होता ही। श्यामा प्रसाद की समझ ही में नहीं आया कि कैसे रिएक्ट करें। वे सीधे घर की तरफ़ जा रहे थे तो चलने लगे।

– "भाई साहब क्षमा कीजिएगा... आपसे अगर कुछ ऊँची-नीची बात हो गई हो तो..."

– "कोई बात नहीं भैया! आप बड़े आदमी हैं।"

– "अरे नहीं दद्दा... आप से बड़ा ललितपुर में कोई नहीं है। आपका लड़का देखो कहाँ से कहाँ पहुँच गया।" श्यामा चुप रहे।

– "दद्दा!" लल्लन मुद्दे पर आ गया, "सलिल तो अपना बच्चा है... कब आ रहा है घर?"

– "पता नहीं... क्यों?"

– "नहीं... देखिये दो महीने बाद विधान सभा के चुनाव हैं। तो हम जै कैरए कि सलिल अगर हमारे साथ मँच पे आ जाए तो हमारे जीतने के चाँसेज बन जाएँ। और हम जीत गए तो फिर आपकी बादशाही है। आप बड़े भाई हैं हमारे।"

श्यामा प्रसाद की समझ में यह नहीं आया कि सलिल के स्टेज पर बैठने से लल्लन के इलैक्शन जीतने के आसार कैसे बन जाएँगे। लेकिन उनकी समझ में तो ये भी नहीं आया कि उनका लड़का अब मामूली लड़का नहीं रहा– स्टार बन चुका है।

8

दरवाज़े की घंटी बजी। सुबह का वक़्त था। नौकर नया था, उसने दरवाज़ा खोला और उसके लाख रोकने पर भी रज़ाक अन्दर दाख़िल होने लगा। नौकर ने हाथ लगा कर रोक दिया। रज़ाक ने वहीं से आवाज़ लगाई–

"सलिल! देख यार ये आने नहीं दे रहा है तेरा सिपाही।"

– "साहब बाथरूम में हैं!" नौकर ने नौकरी बजाई।

– "वो क्या नई बात है... सारे स्टार्स वहीं होते हैं और हमेशा होते हैं।" रज़ाक हँसा।

सलिल कमरे से निकलकर दरवाजे पर आ गया।

– "अरे रज़ाक!" फिर उसने नौकर से कहा, "आने दे, आने दे!"

– "पिक्चर रिलीज़ पर है?!"- रज़ाक बोला।

– "रिपोर्ट क्या है?"

– "रिपोर्ट अच्छी है! ...दीवान साहब ने अच्छा सौदा किया है। यू.पी. बिहार में काफ़ी प्रिंट्स रिलीज़ हो रहे हैं। बाकी तो रिलीज़ के हफ़्ते पता चलेगा।"– "रिपोर्ट आएगी तब!"

– "यही तो... प्रोड्यूसर साले सब हरामी होते हैं... देखो न, मुझे इस पिक्चर का एक रुपया नहीं दिया और अगली पिक्चर का दस हज़ार दे रहा है। कहता है परसेंटेज पर करो... ऊपर से हरामी ने तीन साल का कॉन्ट्रैक्ट कर रखा है।" सलिल का गुस्सा निकल आया।

– "तुझसे कहा था मुझे सैक्रेटरी रख ले... मैं तेरी सब बातें संभाल लेता और तेरे कॉन्ट्रैक्ट में भी बदल करवा लेता। तू माना नहीं।"

– "अरे मैं नहीं यार! वो साला दीवान... प्रोड्यूसर मादर...!"

– "प्रोड्यूसर को क्यों गाली देता है। उसी ने तो तुझे ब्रेक दिया और प्रोड्यूसर ही है जो एक्टर को पैसे देता है, काम देता है।"

– "तो क्या मुफ़्त में! साले... अगर मुझमें एक्टर मैटीरियल नहीं होता तो क्या वो कभी ब्रेक देता? प्रोड्यूसर को हमेशा हर पिक्चर के लिए स्टार की ज़रूरत होती है।"

– "और अब तू स्टार हो गया है!" रज़ाक ने मज़ा लिया।

– "हँ हँ हँ हँ...! अभी क्या स्टार यार! अभी तो बहुत वक़्त है।"

— "अच्छा! आज महूरत है नई पिक्चर का?"

— "हाँ... चार बजे... मेहबूब स्टूडियो में।"

— "मैं पहुँच जाऊँगा!" रज़ाक ने बेफ़िक्री से कहा, "अगर तुम्हें लगे कि मौक़ा है तो दीवान साहब से मिलवा देना अगर वो चाहें तो मुझे नैक्स्ट पिक्चर में प्रोडक्शन दे दें।"

सलिल ने रज़ाक की तरफ़ देखा। फिर उसने कुर्सी में इत्मीनान से बैठते हुए कहा, "यार!... आज... मत आओ तो ठीक रहेगा। देख वहाँ, महूरत में एक तो किसी को फ़ुर्सत नहीं होगी। पेपर वाले, रिपोर्टर, डिस्ट्रीब्यूटर वग़ैरह सब होंगे और दूसरे आशा देवी भी होंगी। दीवान साहब को फ़ुर्सत भी नहीं होगी और अगर मैंने तुझे मिलवाया भी तो उन्हें ध्यान नहीं रहेगा। किसी और दिन रखते हैं।"

— "सीधे कह न कि मेरे जैसे छोटे आदमी का वहाँ होना तेरी शान के खिलाफ़ हो गया है।"

— "अरे क्या बात करते हो यार!"

— "और क्या!? दीवान साहब के ध्यान की क्या बात है... वो थोड़े ही मुझे वहीं काम दे देंगे। वो मिलेंगे तो बोलेंगे कि ऑफ़िस आकर मिलो। लेकिन ठीक है अगर तुम्हें लगता है कि नहीं आना चाहिए तो मैं नहीं आऊँगा।"

— "देखो यार...!"

— "कोई बात नहीं दोस्त... वैसे भी कहाँ तुम और कहाँ मैं!"। सलिल ने रज़ाक के गले में बाहें डालीं— "आजा! बैठ!" फिर नौकर को बुलाकर चाय बना लाने का ऑर्डर दिया।

मेहबूब स्टूडियो ऐसे सजा था जैसे किसी की बारात आने वाली हो। बाहर सड़क से लेकर फूलों की लड़ें। कटे हुए पतँगी काग़ज़ों की झालरें। अन्दर आते साथ जिस स्टेज पर महूरत था उससे ज़रा पहले से लाल जूट का कॉर्पेट डाला गया था। स्टूडियो का दरवाज़ा फूलों से सजाया गया था। दीवान साहब की आज रिलीज़ हुई पिक्चर का पोस्टर एक तरफ़ और आज शुरू होने वाली पिक्चर का पोस्टर दूसरी तरफ़ लगे थे। प्रोडक्शन के लोग इधर-उधर भाग रहे थे। इन्तज़ाम पूरे जोश पर था। दीवान साहब पहुँच चुके थे। स्टूडियो के अन्दर थे। रामगोपाल जी अपने आप को स्टार डायरेक्टर समझते हुए इतराते हुए इधर-उधर घूम रहे थे। एक पिक्चर रिलीज़ पर दूसरी सैट पर और वो भी जिनसे डिस्ट्रीब्यूटर और प्रोड्यूसर ख़ुश हैं, जिसकी ट्रेड में अच्छी रिपोर्ट है— इससे ज़्यादा किसी डायरेक्टर को और क्या चाहिए!

दीवान जी ने घड़ी देखी, "सलिल नहीं आया! उसे जल्दी बुलाया था न... उसका मेकअप करवा के सैट पर लाने में टाईम लगेगा न...!"

— "बोला था सर उनको... चार बजे तक आने को।"

— "तो साढ़े चार तो बज गए।"

— "बस आते होंगे सर! ...मैं देखता हूँ!"

— "और आशा देवी?"

— "उनको सर, टाईम ही साढ़े चार का दिया था... उनका सैड-सीन है न... बहुत हल्का-सा टच-अप है और सफ़ेद साड़ी है, बस!"

— "स्टार बना दिया आपने दीवान साहब... और स्टार छोटा हो या बड़ा... सब एक से होते हैं।" रामगोपाल जी ने दीवान जी से कहा।

— "पैर की जूती जूती ही होती है यार!" एक डिस्ट्रीब्यूटर ने चुटकी ली।

दीवान साहब कुछ नहीं बोले। वो जानते थे कि कहीं इत्तेफ़ाक से किसी ने उनका रिएक्शन सुन लिया और अगर वो स्टार्स तक पहुँच गया तो उनकी प्रोड्यूसरी को तकलीफ़ पहुँचा सकता है। इसलिए वो चुप थे। हालाँकि ख़्यालात उनके भी बिल्कुल वो ही थे जो कि डिस्ट्रीब्यूटर के थे।

— "आशा जी आ गईं सर!" लड़के ने भागते हुए आकर दीवान जी को ख़बर दी।

— "आ गईं... चलो!" दीवान जी रामगोपाल जी को ले के आशा जी को वैलकम करने चले। डिस्ट्रब्यूटर भी साथ हो लिए।

— 'आशा ऽ... जी ऽ...!" बड़ी गर्म जोशी से दीवान जी ने उनसे हाथ मिलाते हुए कहा। दो रिपोर्टर्स फ़ोटो खींचने लगे— "एक मिनट सर!"

दो मिनट के लिए दोनों एक ही पोज़ में ठहर गए। पीछे से रामगोपाल जी ने भी अपनी गर्दन घुसेड़ दी। आना तो डिस्ट्रीब्यूटर भी चाहता था फ़्रेम में लेकिन वह अपना मन मसोसकर रह गया।

— "थैंक्यू मैडम!" फ़ोटाग्राफ़र ने फ़ोटो खींचकर शुक्रिया अदा किया।

— "आइये आशा जी..." दीवान साहब हीरोइन को लेकर उसके मेकअप रूम तक छोड़ने आए, "आप तैयार हो लीजे... फिर करते हैं!"

— "वो आ गया... वो आपका हीरो... क्या नाम है उसका?"

— "सलिल!... वो आ गया... तैयार हो रहा है।"

दीवान साहब ने झूठ बोल दिया। सलिल अभी तक नहीं पहुँचा था। साढ़े चार की छः बजे तो आशा देवी आई थीं। दीवान जी वो खीझ भी पी गए।

— है कहाँ वो मादरचोद!... अभी तक आया क्यों नहीं...? दीवान जी ने बाहर आकर प्रोडक्शन वाले पर अपना गुस्सा जताया।

— "फ़ोन कीत्ता सर... घर में घंटी जा रही हैगी।"

— "हरामज़ादे, साले... एक फ़िल्म कर ली तो ये हाल है।"

इतने में सामने गाड़ी आ के रूकी।

— "वो आ गया सर!" प्रोडक्शन का लड़का चिल्लाया।

फिर गाड़ी तक जाकर उसने दरवाज़ा खोला, "सलिल जी! नमस्कार सर!"

दीवान जी ने मन ही मन गाली दी लेकिन बाहर से ऐसे मुस्कुराए जैसे कि उनका बेटा आ गया हो।

सलिल ने आकर दीवान जी के पैर छुए।

दीवान जी ने उसके सर पर हाथ रखा। फिर उसे गले से लगाकर कहा, "जा बेटा तैयार हो जा... आशा देवी भी तैयार हैं।"

– "शॉट लगवाता हूँ।" कहकर रामगोपाल जी वहाँ से हवा हो लिए।

मुहूरत शॉट था। सीधा-सादा। ज़्यादातर मुहूरत शॉट केवल एक फ़ॉरमेलिटी होता है। शूटिंग शुरू करने के लिए कुछ भी शगुन के तौर पर। ज़्यादातर मुहूरत शॉट फ़िल्म में इस्तेमाल नहीं किया जाता। एक शॉट हुआ, लोगों ने ताली बजाई, मिठाई खाई, बधाइयाँ दीं और बस! हो गया काम! दरअसल शूटिंग शुरू होगी दूसरे दिन से।

आज का शॉट ये था कि आशा जी जो एक पुरानी फ़िल्म स्टार रह चुकी हैं, अब बुजुर्ग हो गई हैं और आजकल बेकार हैं। अपने घर में अकेली एक कुर्सी पर ख़ामोश बैठी हैं। सलिल जो कि उनका बहुत पहले से बहुत पुराना फ़ैन रह चुका है वो अन्दर आकर उनको पहले तो निहारता है, फिर उनसे कहता है कि वो उनका कितना पुराना और कितना बड़ा फ़ैन है। आशा जी का डायलॉग कोई नहीं था, सिर्फ़ रिएक्शन थे। सलिल का डायलॉग था वो भी बहुत मामूली-सा, एक लाइन– 'आप जैसी एक्ट्रेस मैंने आजतक नहीं देखी।' बस! आशा देवी को यह बात पसंद नहीं आई। "मेरा डायलॉग कोई नहीं!"

– "इत्ता फ़नटास्टिक रिएक्शन है आपका मैडम जी... डायलॉग से कहीं पावरफ़ुल!" रामगोपाल जी ने बात सम्भाली।

– "कुछ तो होना चाहिए...।"

– "ठीक है जी, ...ओ राइटर...!" राइटर बुलाया गया। "ओ... एक लाइन तो लिख भाई मैडम के लिए।"

महूरत के लिए पाँच बजे का टाइम दिया गया था। सात बजने आए थे। अभी इन्तज़ाम चल रहा था। रामगोपाल जी इधर-उधर घूम रहे थे। राइटर ने आशा देवी के लिए एक ज़बरदस्त लाइन लिख दी थी। कैमरामैन लाइटिंग के लिए हिदायतें दे रहा था। पत्रकार लोग चाय-नाश्ते और गप-शप में व्यस्त थे। डिस्ट्रीब्यूटर्स के साथ दीवान जी अपनी दोस्ती गाढ़ी कर रहे थे और अपनी आज रिलीज़ हुई पिक्चर की तारीफ़ें कर-करा रहे थे। रिपोर्ट ये थी कि पिक्चर चल पड़ी थी। इसलिए दीवान जी को और रामगोपाल जी को लोग बधाइयाँ दे रहे थे। सलिल को भी यह बात ज़ाहिर है, पता चल चुकी थी और शायद इसीलिए वो आशा देवी से भी लेट सैट पर पहुँचा था ताकि जता सके दुनिया पर कि वो भी कोई कम बड़ा स्टार नहीं है।

आशा देवी टहलते हुए सैट पर पहुँच गयीं।

– "आइये मैडम!" दीवान जी ने उनसे कहा, "इनसे मिलिये... ये निचानी भाई, ये धर्मवीर भाई, ये गाला जी... ये...!" दीवान जी ने आशा देवी को मौजूद डिस्ट्रीब्यूटर्स से मिलवाया। छोटी मोटी बातचीत चलने लगी। रामगोपाल जी को लगा कि अब सलिल को उसकी औक़ात दिखाने का वक़्त आ गया है। उन्होंने आशा देवी से कहा, "मैडम ... आपको, आइये शॉट बता दूँ!"

– "चलिए।"

आशा देवी को लेकर रामगोपाल जी सैट पर गए। वहाँ उन्होंने सीन समझाया, रिएक्शन बताये। वे समझा ही रहे थे कि पीछे से सलिल आ गया। उसने रामगोपाल जी से नमस्ते की। राम जी ने जवाब में हल्का-सा हाथ मिलाया और आशा देवी को शॉट समझाते रहे। सलिल को उसकी औक़ात बतानी ज़रूरी थी। सलिल दो एक मिनट रूका फिर दीवान जी और डिस्ट्रीब्यूटर्स के पास चला गया।

– "हाँ जी! ...आओ जी!" दीवान जी मुस्कुराए।

– "फ़ुल लाइट्स! रिहर्सल!" कैमरामैन गरजा।

– "जा पुत्तर... तेरा शॉट रेडी सी।" दीवान जी ने सलिल से कहा।

सलिल पहुँचा। उसने आशा जी से नमस्ते की। उनकी तारीफ़ की और कहा कि उनके साथ काम करने का मौक़ा उसका सौभाग्य है और सीखने का मौक़ा है। आशा जी खुश हो गईं। रामगोपाल जी के उसने पैर छुए और उनसे आशीर्वाद माँगा। रामगोपाल जी फूल के कुप्पा हो गए। उन्होंने उसे गले लगाया। कैमरामैन पिछली फ़िल्म वाला नहीं था। उससे सलिल ने 'हैलो' किया और कहा– "सर! ख़्याल रखियेगा!" कैमरामैन की बाँछें खिल गईं। ऐसा करना ज़रूरी था क्योंकि कैमरे में क्या क़ैद हो रहा है यह तो कैमरामैन ही जानता है। किसी फ्रेम में उसने उसका सर काट दिया या फ्रेम में 'इन्क्लूड' नहीं किया तो...!? इसलिए सबसे बनाकर रखना ज़रूरी था। सब एक-दूसरे से जुड़े थे। सब एक-दूसरे की जै-जै कर रहे थे। कोई किसी को नाराज़ नहीं करना चाहता था। क्योंकि सबका सबसे सब कुछ जुड़ा था। काग़ज़ की पँखुड़ियाँ हैं– ज़रा में तो मुड़ती-फटती हैं!

फ़िल्म की शुरुआत थी। नारियल फ़ोड़ा गया।

– "फ़ुल लाइट्स! टेकिंग।" कैमरा वाला चिल्लाया।

– "स्टार्ट साऊँड।" रामगोपाल जी गरजे।

– "कैमरा!" साऊँड वाले की आवाज़ आई।

– "रनिंग!" कैमरा वाले ने कहा।

– "एण्ड... एक्शन!" रामगोपाल जी ने इशारा किया।

जितने मौजूद थे सबने साँसें थाम लीं। शॉट में आशा देवी कुर्सी पर बैठी खिड़की से आकाश को निहार रही थीं। पीछे कमरे का दरवाज़ा खुला, आशा जी ने मुड़कर उस तरफ़ देखा। सलिल दाख़िल हुआ। उसने आशा जी से नमस्ते की। आशा देवी ने हल्के से सर हिला दिया और सवालिया नज़रों से सलिल को देखा। सलिल पास आकर खड़ा हो गया। उसने कहा, "आशा जी... आपसे बड़ा कलाकार– मैंने आजतक नहीं देखा। मैं बंबई तक सिर्फ़ आप ही के लिए आया हूँ।" आशा देवी उसे पहले तो देखती रह गई फिर उन्होंने अपनी लाईनें बोलीं, पल्लू के कोने से अपनी आँखें पोंछीं और फिर वो फ़्रीज़ हो गईं। सलिल भी उसी पोज़ीशन में फ़्रीज़ हो गया। कैमरा पहले दोनों को फ्रेम में लेकर बाद में आशा देवी के क्लोज़ अप पर आकर ट्रॉली करता हुआ रूक गया। रामगोपाल जी चिल्लाये– "कट! वैरी गुड!"

सब लोगों ने ताली बजाई। सलिल और आशा जी ने एक-दूसरे को बधाई दी। मिठाई बाँटी गई। नई फ़िल्म के लिए सबने एक-दूसरे को बधाइयाँ दीं।

– "आपके बारे में बहुत सुना है।" आशा देवी ने सलिल से कहा।

– "मैं तो आपके सामने कुछ भी नहीं।"

फिर दोनों एक-दूसरे को बातों से खुश करते रहे। सीधी-सी बात थी। आशा जी अब स्टार हैं। आने वाले कल का स्टार सलिल है। इसलिए उनको इससे और इसको उनसे बनाकर रखने की ज़रूरत है।

फिर डिस्ट्रीब्यूटर्स की आपस की बातचीत शुरू हो गई।

– "मैं तो जी पाकिस्तान की हीरोइन और इण्डिया का हीरो लेके पिक्चर सोच रियाँ ... दोनों कन्ट्री में चलेगी।"

– "मैं तो जी, आई एम हैप्पी विद द म्यूज़िक डायरेक्टर दियर... म्यूज़िक पाकिस्तान वालों नूं खूब आन्दा हैगा।"

– "हमारे लोगों को नई आता?"

– "ओ नईं मैं कैरा जी...!"

– "राइटर लै लेयो पाकिस्तानी... मैं तो वो देख्या उनके टी.वी. सीरियल... अरे क्या राइटर है... कोई कै रिया सी एक लेडी है कोई अख़्तर... शी इज़ वैरी गुड! मैं तो साइन कर लैणां उन्हानू।"

– "ओए सब बेकार बात है... स्विटज़रलैंड जाओ... वहाँ शूटिंग करो... सब ऑडिएन्स को पसंद आएगी।"

– "भाई! आप जाओ! मेरे ख़्याल से तो इण्डिया में भी लोकेशन बहुत अच्छी-अच्छी हैं... कश्मीर ले लो, माँडू ले लो, कुर्ग ले लो, आसाम ले लो... और इधर सारा कुछ कन्ट्रोल में भी रहता है।"

– "कन्ट्रोल क्या सर... साले स्टार्स भाग जाते हैं। कोई आता ही नहीं। कोई लेट आता है, कोई दो शूटिंग और ले लेता है... इससे तो इण्डिया के बाहर चले जाओ वहाँ साला किदर जाएगा... शॉपिंग पे जाएगा... घूमन जाएगा... और कित्थे जाएगा! वो अपने को सस्ता पड़ता है। स्टार सामने होएगा तो शूटिंग होती रहेगी। यहाँ तो शूटिंग रख लो ये किदर-किदर चले जाते हैं, आते ही नहीं।"

सब अपने-अपने दर्द बयान कर रहे थे। अपनी-अपनी प्लानिंग एक-दूसरे से डिसकस कर रहे थे। उधर कब सलिल और आशा देवी अपने मेकअप रूम में चले गये किसी को पता नहीं चला– सिवाय स्पॉट ब्वॉय के। वो भी इसलिए कि वहाँ उससे दो बोतल लिम्का लाने की ताक़ीद की गई थी। और उसको ख़बर लगी तो मतलब सबको ख़बर लगी। और ऐसी ख़बरें तो जल्दी फ़ैलती है।

– "ओए क्या चीज़ है आशा देवी... साली की तो लेते रहो, लेते रहो, लेते रहो... दीवान तो जी ले ही चुका होएगा... अब साला वो लौंडा ले रहा है उसकी ..."

– "दीवान जी तो संत आदमी है भैये! उसे तो अपनी पिक्चर और अपने पैसे से मतलब। उसकी बला से दुनिया कुछ भी करे।"

– "आए होए! वड्डा संत सी दीवान... ओए... रात के तीन बजे आशा देवी के संग दवा की दुकान पे मैंने ख़ुद इन्हीं आँखों से देखा है। ...वड्डा संत सी दीवान जी!"

– "चलो जी अपणे को क्या करना... आशा तो है ही ऐसी। उसका वो किस्सा नहीं सुणा... एक नया इनकम टैक्स कमिश्नर आया था। वो उसका बड़ा फ़ैन था। बंबई आया तो उसणे भौत कोशिश की... भौत कोशिश की आशा देवी से मिलण की... ये मिले ही नहीं। उसने आशा देवी के घर रेड डलवा दी... मामला बढ़ गया। उसे ये नहीं मालूम था कि आशा देवी उसकी भी बाप है। आशा ने मिनिस्टर को दिल्ली फ़ोन घुमाया कि देखो जी ये कमिश्नर तंग कर रहा है। रातोंरात साले का ट्रॉन्सफर हो गया। सारे केस रफ़ा-दफ़ा हो गए...!"

– "इन फ़िल्मी हीरोइनों के भी टाँके फ़िट होते हैंगे।"

– "टाँके क्या... जो साले अँगूठा छाप आते हैं मिनिस्टर बण जाते हैं वो इन फ़िल्मवालों पे ज़्यादा फ़िदा होते हैं।"

– "अब उन्हें क्या मालूम कि ये तो नाली है... गटर हैं जी गटर!"

– "चलिए अपणे को क्या लेना-देणा जी...! आपकी दीवान जी से बात हो गई ... ये पिक्चर तो वो वर्ल्ड राइट बेच नहीं रहे।"

– "तो भई उनकी ये पिक्चर तो हिट हो गई लगती है न... उसका तो फ़ायदा उन्हें मिलेगा न!"

– "इतनी ही बात होती तो भी ठीक था... दीवान ने तो बड़ा खेल खेला है इस बार। कम मत समझना इस बदमाश को... आशा देवी को वो यों ही नहीं लाया। आशा देवी के मिनिस्टर से संबंध है। उसका प्लान इस कनेक्शन से पिक्चर को टैक्स फ़्री करवाना है। दोनों तरफ़ से कमाएगा। टैक्स का और प्रिंट की ड्यूटी का दोनों का पैसा बचाएगा– फिर हमसे बारगेन करेगा। दूसरे टैक्स फ़्री होगी तो पब्लिक भी थियेटर में ज़्यादा जाएगी सो उधर से भी कमाएगा। और ख़र्चा क्या है इसका?! लड़का घर का है, यूनिट घर की है सिर्फ़ एक हीरोइन का ख़र्चा है– बस! अरे बड़ा शातिर बिज़नैस मैन है दीवान जी... ऐसे न समझो इसको।"

बात धन्धे पे आ गई और शाम भी गाढ़ी होने लगी। कुछ का पीने-पिलाने का टाईम भी हो चला था। दीवान और उसकी यूनिट बिज़ी थे क्योंकि कल से तो रैगूलर शूटिंग चलने वाली थी। इतने में दूसरी तरफ़ से सलिल भी आया और उसने सबसे हाथ मिलाकर जाने की इजाजत माँगी। ड्राइवर ने गाड़ी सामने लगा दी। सलिल उसमें बैठ कर जाने लगा तो एक डिस्ट्रीब्यूटर भी साथ हो लिया, "चलिए जी हूण भी नाल चलते हैंगे।"

गाड़ी स्टूडियो से बाहर निकली। हिल रोड से टर्नर रोड पर मुड़ ही रही थी कि एक बस स्टैंड पर डिस्ट्रीब्यूटर की निगाह मुड़ी और रूक गई।

– "अरे सलिल जी! ...सर गड्डी रोकेंगे...।"

– "क्या हुआ?"

– "वो आदमी देखते हैं... वो नारंग साहब हैं।"

– "कौन नारंग साहब?" सलिल ने पूछा।

– "नारंग साहब!... एक ज़माने के बड़े मशहूर प्रोड्यूसर... कितनी फ़िल्में बनाईं इन्होंने... इनका हाथ था कि पारस पत्थर... जिसके साथ पिक्चर की उसे स्टार बना दिया. .. बस एक पिक्चर यूसुफ़ के साथ की– लुट गए बेचारे...।"

– "अच्छा!" सलिल ने बिल्कुल कुछ न समझते हुए कहा।

– "गाड़ी रोकिये सर! इन्हें लिफ़्ट दे देते हैं"

– "अरे किस-किस के लिए गाड़ी रोकियेगा मेरे भाई... मुझे एयरपोर्ट जाने के लिए देर हो रही है।"

सलिल की गाड़ी आगे बढ़ तो गई लेकिन आगे जाकर ट्रैफ़िक लाइट पर खड़ी हो गई। डिस्ट्रीब्यूटर ने उसकी तरफ़ देखा लेकिन कुछ और कहा नहीं। उसे क्या मालूम था कि सलिल ने नारंग साहब के लिए गाड़ी क्यों नहीं रोकी। उसे क्या मालूम था कि कभी सलिल नारंग साहब की जूठी तश्तरियाँ धोने का काम करता था और बंबई में अगर वह टिक पाया तो उन्हीं की प्रोडक्शन कम्पनी की बदौलत। वहीं उसकी यूसुफ़ से मुलाक़ात हुई और फिर रज़ाक से। लेकिन यह वात किसी को मालूम न चले तो अच्छा क्योंकि अब तो वो स्टार है।

9

बंबई में जुहू बीच के इस तरफ़ सरकार ने एक पाँच सितारा होटल खोला था– सैन्टॉर। एक सैन्टॉर हवाई अड्डे पर था दूसरा यह– जुहू पर। बड़ी जगह थी, खुली-खुली। इतनी बड़ी जगह और वो भी फ़िल्म वालों की बस्ती के पास। इस साल फ़िल्म फ़ेयर पुरस्कार यहीं करने का ठहराया गया। पासेज़ बाँटे गए थे। लोग न जाने कहाँ-कहाँ से जान पहचान निकाल-निकालकर समारोह में जाना चाहते थे। फ़िल्म वालों के दर्शन मात्र से पवित्र होना चाहते थे। ये दूसरी बात है कि जिसे वे इत्र समझ रहे थे वह दरअसल इत्र था ही नहीं।

शाम जवान हो रही थी और फ़िल्म वालों की और उनके मेहमानों की गाड़ियों पर गाड़ियाँ गलियारे से लेकर जुहू तारा रोड पर जाम लगा रही थीं। लोगों का पैदल चलना मुश्किल हो रहा था। एक फ़िल्म वाला वहाँ बाहर बैठकर चिल्ला रहा था– "आई एम ए बास्टर्ड!" उस ज़माने में उसको अपनी पब्लिसिटी के लिए यही मुद्दा मिला था। था क्या कि उसके बाप ने दो शादियाँ की थीं। एक बाक़ायदा और दूसरी शायद मंदिर वंदिर में। दूसरी से जो औलादें थीं उन्हें वह लीगल दर्जा नहीं दे पाया क्योंकि वह तो पहली बीवी का हक़ बनता था। इसलिए उसकी ये औलादें– हालाँकि अपने बाप का नाम अपने नाम के साथ लगाती थीं– रहती अलग थीं। इन औलादों में से एक लड़का फ़िल्मों में आ गया। डायरेक्टर बन गया। उसको न्यूज में बने रहने के लिए कोई सैन्सेशन चाहिए था। उसने अपने आपको 'बास्टर्ड' कह कर अपनी पब्लिसिटी कर ली। अख़बार वाले, फ़िल्म वाले, पत्रिका वाले, रेडियो वाले– सबको मसाला मिल गया और इनकी हर्र लगी न फिटकरी मुफ़्त में पब्लिसिटी हो गई।

शाम जब और जवान हो गई... क़रीब नौ बजने आए तब जाकर प्रोग्राम की शुरुआत हुई। फ़िल्मों के तमाम सितारे मौजूद थे। फ़िल्म से संबंधित लोग, उनके रिश्तेदार, फ़िल्म वालों को जानने वाले, सरकारी अफ़सर, अख़बार वाले– तमाम।

यूसुफ़ को लाईफ़ टाईम एवार्ड दिया जाने वाला था। हालाँकि ये उसे मालूम था लेकिन जब एनाउँस हुआ तो उसने ऐसे दर्शाया जैसे कि उसे इस बात पर ताज्जुब हुआ हो। फिर स्टेज पर जाकर उसने अंग्रेज़ी में तक़रीर की। ये फ़िल्म वाले हिंदी फ़िल्मों का खाना खा कर अंग्रेज़ी की सेवा ख़ूब करते हैं।

सबसे अच्छा हीरो उस साल चँचल खन्ना को चुना गया था। ये बात दूसरे कलाकारों के लिए बेहद जलन का बायस बनी लेकिन चँचल के पास जाकर सबने बधाई ऐसे दी जैसे कि उन्हें इस बात से दिली ख़ुशी हुई हो।

चँचल का दिमाग़ आसमान पर था, क़िस्मत क़दम चूम रही थी और मिज़ाज हवा में डोल रहा था। लोग हाथों-हाथ लिए जा रहे थे। शोहरत का नशा पूरे जोश पर था। पत्रकार इकट्ठे हो गए। चारों तरफ़ से सवाल पूछे जाने लगे। एक नई लड़की जो बस कुछ दिन पहले ही पत्रकार बनी थी– वह भी फ़िल्मी पत्रिका में थी और उसने चँचल पर काफ़ी रिसर्च कर रखी थी। वो कहाँ से आया, उसके घर वाले कौन हैं, उसकी बैकग्राउंड क्या है– वग़ैरह! उसने दो एक सवाल पूछे नहीं कि चँचल झुंझला गया। लेकिन लड़की नई थी। उसे तो अपने सम्पादक को 'प्रूव' करना था कि वह अपने काम में कितनी मुस्तैद है। उसने पूछ ही लिया कि 'आपकी तो शादी हो चुकी थी लेकिन आपने फ़िल्मों में आने के लिए अपनी बीवी को क्यों छोड़ दिया?' वो ज़माना वह था जब हीरो अपने आपको हमेशा कुँआरा ही दिखाता / बताता था और ये लड़की तो ग़जब कर रही है! अभी-अभी तो वह स्टार बना है, मँज़िल पर पहुँचा है और ये लड़की उसके सपने को धूल चटाने में लगी है! चँचल ने आव देखा न ताव और तड़ाक से लड़की के गाल पर जड़ दिया।

– ''मैं कहे जा रहा हूँ बेकार की बातें मत करो, मत करो... जाने कहाँ से झूठ-झूठ सुनकर आ जाते हो और बेकार सवाल करने लगते हो...! गैट आउट!''

वाक़्या सबके सामने हुआ था। सबने देखा। हालाँकि उस वक़्त टी.वी. चैनल नहीं थे लेकिन रेडियो और अख़बार तो थे। ख़बर फ़ौरन फैल गई। पत्रकार एक हो गए। चँचल खन्ना को उन्होंने 'बैन' कर दिया। बैन का मतलब कोई पत्रकार अब चँचल का इन्टर्व्यू न करेगा न छापेगा। लेकिन अगर पत्रकार इतने सख़्त हो गए तो फ़िल्म वाले क्या चूड़ियाँ पहन लेते? चँचल आख़िर स्टार था। तमाम प्रोड्यूसरों और डिस्ट्रीब्यूटरों की रोटी उससे चल रही थी। दूसरे दिन प्रोड्यसर्स एसोसिशन में फ़ैसला लिया गया कि कोई भी प्रोड्यूसर किसी भी फ़िल्मी पत्रिका को इण्टर्व्यू नहीं देगा। एक्टर्स एसोसिएशन और डायरेक्टर्स एसोसिएशन ने भी अपने-अपने मैम्बर्स के लिए ऐसे ही फ़तवे जारी कर दिये।

– ''देखते हैं सालों को... जब फ़िल्मों की ख़बरें नहीं छपेंगी तो कैसे बेचते हैं साले अपने अख़बार और पत्रिकाएँ। हमारा ही खा के हमीं को बैन करते हैं।'' फ़िल्मों की तमाम एसोसियेशन्स के लोगों ने एकमत होकर कहा।

फ़िल्मी पत्रकार मक्खियाँ मारने लगे। शूटिंग पर जाना बन्द था। जो दफ़्तरों में काम करते थे अपने-अपने दफ़्तर जाते और लौट आते। शाम को प्रेस क्लब में ले जाकर शराब पिलाने वाला बकरा भी नहीं मिलता। मिलता कैसे– वो तो बैन था। न ये उनके दफ़्तरों-सैटों पर जाते थे न उनके पी.आर.ओ. इनके दफ़्तरों के चक्कर लगाते थे।

एक दिन शाम को 'ईज़ी-टाईम्स' का एक पत्रकार जो गोरेगाँव में रहता था ज़रा जल्दी घर पहुँच गया। उसका घर एस.वी. रोड पर फ़िल्मिस्तान के पास ही था। सो वह सड़क से गुजर ही रहा था कि दीवान जी का प्रोडक्शन मैनेजर मिल गया। दुआ-सलाम हुई। मैनेजर

ने कहा, ''चलो, चाय-शाय पी लो! ...आ जाओ!'' ऑफ़िस जाने में क्या था, ऑफ़िस बैन थोड़े ही था... पत्रकार महोदय चले गए। कम-से-कम चाय तो मिलेगी... शाम ढल ले तो शायद कोई एक-आध पैग भी लगवा दे! ऑफ़िस गए तो अपने केबिन से निकलते हुए दीवान साहब से भी 'हैलो' हो गई। पत्रकार के मुँह से निकल गया, ''क्या सर! आप लोग तो अछूत हो गए हैं!''

– ''बिल्कुल नहीं... मैं क़तई अछूत नहीं हुआ हूँ। क्यों कह रहे हैं ऐसा?''

– ''आप लोग न पत्रकारों से मिलते हैं न हमें अपनी कोई ख़बर देते हैं।''

– ''भई मैं तो सुनता हूँ झगड़ा आप ही लोगों का बढ़ाया हुआ है। पहले आपने बैन लगाया।''

– ''हमने लगाया तो लगाया... लेकिन ऊपर से फ़िल्मों की सारी एसोसिएशन ने भी लगा दिया। झगड़ा बढ़ गया।''

– ''ये सब ग़लत हुआ... न उस लड़की को चँचल से ऐसे सवाल करने चाहिए थे न चँचल को उसे थप्पड़ मारना चाहिए था...। अब बताइये मेरी पिक्चर आधी हो गई है। मुझे दो महीने बाद रिलीज़ करनी है... पब्लिसिटी मेरे लिए बहुत ज़रूरी है लेकिन मैं प्रैस वालों से क्या कहूँ! और मेरे जैसे और भी कितने प्रोड्यूसर्स होंगे।''

– ''आप प्रैस से बात करने को तैयार हैं? मैं छापूँगा आपकी पब्लिसिटी। बस एक इन्टर्व्यू दे दीजिए... छापना मेरी ज़िम्मेदारी है।''

– ''इन्टर्व्यू क्या... अभी ले लो!''

पत्रकार महोदय ने दीवान साहब की पिक्चर की पूरी कवर स्टोरी बनाई। उनका इन्टर्व्यू किया और आने वाली पत्रिका के इशू में छपवा दिया। पत्रकारों को भी फ़िल्म वालों को मुँह चिढ़ाने का मौक़ा मिल गया। फ़िल्म वालों को आग लग गई। प्रोड्यूसर्स एसोसिएशन में तमाम 'शिकायतें' आने लगीं और एसोसिएशन ने अपनी कार्यकारिणी की बैठक बुलाई ताकि दीवान साहब के ख़िलाफ़ एक्शन लिया जाए। वक़्त और दिन मुक़र्रर किया गया और बाक़ायदा एक नोटिस दीवान जी को उनके दफ़्तर में भेज दिया गया।

बाँद्रा में पाली हिल पर प्रोड्यूसर्स एसोसिएशन का बड़ा-सा ऑफ़िस था। जहाँ एक लम्बी मेज़ वाला क़रीब बीस-पच्चीस लोगों के बैठने की व्यवस्था वाला बोर्ड रूम था। पेशी के दिन फ़िल्म इण्डस्ट्री के बड़े-बड़े दिग्गज प्रोड्यूसर्स– जो एसोसिएशन के पदाधिकारी थे– मौजूद थे। दीवान साहब की पेशी थी। दीवान जी जब पहुँचे तो सारे मौजूद लोगों ने उन्हें कुछ इस तरह देखा जैसे कि वो कोई बहुत बड़े मुजरिम हों।

दुआ-सलाम इधर-उधर सर हिलाकर रस्मन हो गए। माहौल देखकर दीवान ने कुर्सी पर बैठते ही पदाधिकारियों को 'कहिए क्या बात है?' का इशारा किया।

– ''दीवान साहब!'' एसोसिएशन के प्रैसीडेंट सिप्पी साहब ने शुरू किया, ''आपको मालूम था कि जरनलिस्टों से बात करना बैन किया गया है फिर भी आपने...''

– ''आपने एसोसिएशन की तौहीन की है।'' एक नौजवान मैम्बर चड्ढा चिल्लाया जो अभी-अभी एक फ़िल्म बनाकर एसोसिएशन का मैम्बर बना था और अपनी पोलिटिकल

तबियत के कारण जोड़-तोड़ करके फ़िल्म प्रोड्यूसर्स एसोसिएशन का इलैक्शन जीत कर यहाँ पदाधिकारी बन बैठा था। आवाज़ ज़्यादा करता था और शायद इसीलिए 'न्यूज़' में रहता था और शायद इसीलिए उसे एसोसिएशन 'सम्भालती' भी थी।

— "ठहरिये चड्ढा साहब... दीवान साहब को जवाब देना है।" प्रेसीडेंट सिप्पी ने चड्ढा से कहा।

— "जी दीवान साहब!" सैक्रेटरी रिज़वान अली ने कहा। रिज़वान कुछ बी-क्लास फ़िल्में बनाकर प्रोडक्शन से संन्यास ले चुके थे और अब एसोसिएशन का ही काम देखते थे। अपनी-अपनी एसोसिएशन का मैम्बर तो हर फ़िल्म वाला होता है लेकिन एसोसिएशन की एक्ज़ेकेटिव कमेटी में ज़्यादातर ऐसे लोग होते थे जो थोड़ा कुछ कर चुके थे और अब बेकार थे लेकिन नोंक-झोंक करने की आदत रखते थे। ऐसे लोग कमेटी के इलैक्शन के दौरान अपने चुने जाने का इन्तज़ाम करके, दूसरे प्रोड्यूसरों से वोट देने की अपील करके जीत कर कमेटी में आ जाते थे। सरकार सिर्फ़ एसोसिएशन से 'डील' करती है। विदेशों के लोग, वहाँ की सरकारें, वहाँ के प्रोडक्शन हाउसेज़ सब एसोसिएशन से डील करते हैं। जितने भी फ़िल्म पुरस्कार या समारोह होते हैं उनकी ख़बर सबसे पहले इन्हें लगती है और उन सबके पासेज़ इनके ही पास आते हैं। प्रोड्यूसर्स का अगर किसी बात को लेकर आपस में कोई झगड़ा हो जाए या कोई कॉपीराइट इशू हो जाए तो उसका निबटारा करने का काम भी एसोसिएशन करती है। फिर जितने मैम्बर प्रोड्यूसर्स हैं वो सालाना चँदा देते हैं— ख़र्चा उसी में से चलता है। तो अगर रोज़ाना भी एसोसिएशन ऑफ़िस में पहुँच गए तो चाय-नाश्ता फ़्री, आने-जाने का कन्वेन्स फ़्री और अगर कोई मीटिंग हो गई— जो कि होती रहती है— तो खाना पीना भी फ़्री। और अगर कहीं मीटिंग बंबई के बाहर हुई— दिल्ली या गोवा में या कहीं और— तो वहाँ का आना-जाना, खाना-पीना, ठहरना सब एसोसिएशन के सर। इसलिए एसोसिएशन के अपने फ़ायदे थे। जो प्रोड्यूसर व्यस्त थे, जो फ़िल्में बनाने में लगे थे, उनके पास इस सब के लिए समय नहीं था और बहुत से ऐसे थे जो इस सब पोलिटिकल झँझट में पड़ना नहीं चाहते थे इसलिए दूर ही रहते थे।

— "मैंने कोई गुनाह नहीं किया जो इस तरह आप मुझे यहाँ बुलाकर नसीहत दे रहे हैं।" दीवान जी ने शाइस्तगी से कहा।

— "हम नसीहत नहीं दे रहे हैं दीवान जी... हम तो पूछ रहे हैं।" रिज़वान अली ने अपने मुँह से दबे पान को दायीं डाढ़ से बायीं डाढ़ की तरफ़ करके कहा।

— "अजीब आदमी हैं आप... गुनाह करते हैं और कुबूल भी नहीं करते।" मुकेश जोशी— जो कभी एक-आध राजस्थानी पिक्चर बना चुके थे— बोले।

— "देखिये! ये सब चँचल कुमार के फ़ेवर में, उसके सपोर्ट में तमाशा किया गया है क्योंकि तमाम लोगों का उस पर पैसा लगा है। पर 'एज़ ए प्रोड्यसर' आप मुझे बताइये कि मैं क्या करूँ? मेरी पिक्चर बन रही है, मेरा पैसा लगा है, मुझे पब्लिसिटी की ज़रूरत है। दूसरे, पत्रिका वाले मेरे पास आए है, मैं उनके पास नहीं गया।"

— "ख़रबूज़ा छुरी पर गिरे या छुरी ख़रबूज़े पर गिरे— क्या फ़र्क पड़ता है?" एक बोला।

— "फ़र्क तब पड़ता है जब बात आइडियोलॉजी की हो रही हो।"

— "आपने जो किया है वो एसोसिएशन के रूल्स से ग़लत है। आप पर तो इन्क्वायरी बैठानी पड़ेगी और अगर उसका निर्णय यह हुआ कि आपको..." सिप्पी कहते-कहते कुछ रूक गया। लेकिन बीच में चड्ढा टपक पड़ा और उसने ज़ोर से कहा, "इसके लिए हम आपको बैन कर सकते हैं।"

— "बैन!? ...तुम लोग मुझे बैन करोगे...!" दीवान को एकदम गुस्सा आ गया। उसके सिर पर ख़ून उतर आया, आँखें बड़ी और सुर्ख हो गईं, "मुझे... दीवान चँद राय को!... तुम्हारी औक़ात क्या है... एक फ़िल्म बनाकर चले आते हो, यहाँ बैठकर बेकार की पॉलिटिकल बातें करते हो। ...मैं रैगुलर प्रोड्यूसर हूँ... मेरा स्टूडियो है, मेरा स्टाफ़ है, मैं बीस फ़िल्में बना चुका हूँ और उन बीस में से मेरी उन्नीस फ़िल्में हिट हैं... मैं अब भी फ़िल्म बना रहा हूँ... और तुम! ...तुम मुझे बैन करोगे... तुम्हारी इतनी हिम्मत!"

— "दीवान साहब... दीवान साहब..." रिज़वान अली ने दीवान जी के क़रीब जाकर उनकी पीठ थपथपाकर उन्हें शान्त करने की कोशिश की।

— "देखिये... इतनी भी तहज़ीब नहीं रहेगी यहाँ तो कैसे चलेगा! और आप क्या बैन करेंगे मैं खुद एसोसिएशन छोड़ दूँगा। करती क्या है एसोसिएशन मेरे लिए? चँदा जमा करती है, बस! मैं कौन-सा कोई फ़ायदा लेता हूँ आपसे?" दीवान जी कुछ शांत होते दिखे।

— "और चड्ढा साहब!" रिज़वान ने चड्ढा से कहा, "आप ज़रा शांत रहिए।"

— "ओ जी मैं तो कुछ गल़्त क्या ई नईं... एसोसिएशन दे रूल्स दे मुताबक ..."

— "शांत... प्लीज... शांत!" रिज़वान ने चड्ढा को फिर शांत करवाया।

— "कुछ पैनल्टी रख देते हैं।" सिप्पी ने धीरे से कहा।

— "किस बात की?" दीवान ने पूछा।

— "ओ जी साईं... कुछ तो करना पड़ेगा... नई तो और दूसरे एसोसिएशन वाले क्या कहेंगे कि हमने कोई एक्शन नहीं लिया।"

— "दूसरे एसोसिएशन मतलब?"

— "देखो जी एक्टर्स एसोसिएशन है— बहुत पावर फुल है। डायरेक्टर्स एसोसिएशन है, सिनेमाटोग्राफ़र्स एसोसिएशन है... ये सब बड़ी पावर फुल एसोसिएशन हैं भाई। ये क्या कहेंगी... कि प्रोड्यूसर्स एसोसिएशन ढीली है।"

— "लोग ये भी कह सकते हैं कि क्या बेवकूफ़ी का चार्ज है।"

— "बेवकूफ़ी... बेवकूफ़ी! यह बात करने का तरीक़ा है! हमें बेवकूफ़ कहा... अब तो इन्हानू बदसुलूक़ी के चार्ज पर भी बैन करना पएगा।" चड्ढा फिर चिल्लाया शायद इसी तरह चिल्लाना उसकी आदत थी जो उसे न्यूज़ में बनाए रखती थी।

— "किसे बैन करोगे मेरे दोस्त!?" दीवान का गुस्सा अब कन्ट्रोल में था, "किसे बैन करोगे? ...मैं तो फ़िल्में बनाता रहा हूँ और बनाता रहूँगा। मेरे पास एक लाख होगा मैं एक लाख की फ़िल्म बनाऊँगा, मेरे पास एक करोड़ होगा एक करोड़ की बनाऊँगा ... मुझे तुम क्या बैन करोगे! बैन तो तुम वर्कर को कर रहे हो... वो भूखों मर जाएगा। मेरे स्टाफ़ को बैन कर रहे हो तुम... मुझे तुम क्या बैन करोगे।" दीवान कुर्सी से उठ गए और चलने लगे, "एण्ड थैंक्यू फ़ॉर दिस लवली एक्सपीरीयंस!"

लेकिन उतनी अंग्रेज़ी शायद वहाँ बैठे बहुत से प्रोड्यूसर्स की समझ में नहीं आई।

जब दीवान चला गया तब सारी कमेटी वालों ने एक दूसरे की तरफ़ देखा। तब चड्ढा बोल पड़ा, "हूण की कराँ?"

मामला जहाँ था वहीं रहा। उस मीटिंग में सबका ख़्याल रखते हुए और एसोसिएशन की अपनी इज़्ज़त रखने के लिहाज़ से तय यह हुआ कि 'मिनट्स' में लिख दिया जाये कि मीटिंग में कोई भी फ़ैसला नहीं लिया जा सका और फ़ैसले के लिए एक मीटिंग और लगेगी।

अगली मीटिंग तक़रीबन महीने भर बाद ही हो पाएगी। तब तक सब की राय यह बनी कि शायद मामला अपने आप ही ठंडा पड़ जाएगा या सुलझ ज़ाएगा!

10

दीवान साहब की पिक्चर का एक सीक्वेन्स खण्डाला में शूट होना था। ड्रीम सीक्वेन्स था। आशा देवी जो कि बहुत बड़ी फ़िल्म स्टार हैं, एक लड़का जो उनका बहुत बड़ा फ़ैन है उनके इश्क में पड़ गया है और अपने ख़्यालों में ख़ुद को उनके साथ महसूस कर रहा है। ये ड्रीम सीक्वेन्स एक पूरा गाना था जो कि पूरा का पूरा खण्डाला में फ़िल्माया जाना था। लाइट्स, लाइट ब्वॉयस, कैमरा, असिस्टैन्ट्स, स्पॉट ब्वॉयस, मेकअप वाला, ड्रैस वाली— ग़र्जे कि सारा स्टॉफ़ रात को बस से रवाना कर दिया गया। प्रोडक्शन का एक आदमी उनके सुपुर्द कर दिया गया ताकि वह उन लोगों के खाने पीने का ख़्याल रखे और उनकी ज़रूरियात के लिए ख़र्चा भी कर सके। हालाँकि सफ़र बंबई से खण्डाला (उस ज़माने में जब हाईवे नहीं थी) क़रीब तीन घंटे का था लेकिन रूकते-रूकाते उम्मीद थी कि इनको पहुँचते-पहुँचते सुबह हो जाएगी। इसमें यह भी अंदेशा शामिल था कि कहीं घाट पर ट्रैफ़िक जाम न मिले। जो सीनियर स्टॉफ़ था उसके लिए एक टैम्पो ट्रैवेलर सुबह निकलनी थी। प्रोड्यूसर / डायरेक्टर और कैमरामैन एक साथ ख़ुद दीवान साहब की गाड़ी में जाने वाले थे। वो लोग आराम से नाश्ता करके क़रीब नौ बजे सुबह निकलने वाले थे। तय यह था कि ये लोग क़रीब बारह / एक बजे तक खण्डाला पहुँचेगे। तब तक और सब लोग पहुँच चुके होंगे और लंच टाईम हो गया होगा। खाना खाकर सब लोग लोकेशन पर जाएँगे, वहाँ के इन्तज़ामात पूरे करेंगे और दूसरे दिन सुबह से शूटिंग शुरू की जाएगी। हीरो सलिल था उसको तो गाड़ी दे ही रखी थी। वो ख़ुद अपने आप पहुँचने वाला था। आशा देवी स्टार थीं। वे अपनी गाड़ी से ख़ुद उस दिन शाम तक पहुँचने वाली थी। होटल फ़रियाज़ बुक था। स्टॉफ़ के लिए डबल या किसी-किसी के लिए ट्रिपल रूम, सीनियर लोगों के लिए सिंगल रूम, आशा देवी, सलिल और दीवान साहब के लिए सूट बुक थे। खाना-पीना जिसको जो चाहिए वो रूम सर्विस को फ़ोन करके मँगा सकता था और इस सिलसिले में मज़ा ये था कि जो अपने घरों में गन्दे नल का पानी पीता था वह भी यहाँ आकर सिर्फ़ कोकाकोला ही पी रहा था। बहरहाल, फ़िल्म इण्डस्ट्री का उसूल यही है। प्रोड्यूसर के पैसे पर सब ऐश करते हैं और गाली भी उसी को देते हैं।

— "मेरे कमरे में चद्दर तो बदली ही नहीं।"

— "मेरे यहाँ टॉयलेट साफ़ करवाओ।"

— "आधे घंटे से बोला है साले को चाय ले के आ... आता ही नहीं।"

तमाम लोगों की तमाम तरह की बातें / शिकायतें थीं। कोई गन्दे कपड़े धुलवाने दे रहा था बग़ैर इस लिहाज़ के कि होटल वाला बाहर के एक रुपया कपड़े के मुक़ाबले दस रुपया कपड़ा चार्ज करता था। लंच में सबने सब कुछ मँगवाया। चिकन भी, मटन भी, मछली भी, सब्ज़ी भी, चावल भी, पुलाव भी, रोटी भी, दाल भी, चायनीज़ भी... ग़र्ज़े कि जो-जो कुछ होटल के मेन्यू में था— वो सब। खाते कुछ बना, ज़्यादातर फिका लेकिन किसी को इससे क्या। अपनी जेब से थोड़े ही गया। प्रोड्यूसर का पैसा है। मरने दो।

दीवान जी, कैमरामैन और रामगोपाल जी घाट पर ट्रैफ़िक के कारण एक बजे की बजाए चार बजे खण्डाला पहुँचे। खाना तो सब स्टॉफ़ खा ही चुका था। इन लोगों ने सोचा खाना बाद में खाया जाएगा पहले लोकेशन पर हो लिया जाए वरना शाम का अंधेरा होने लगेगा और फिर काम ज़रा मुश्किल हो जाएगा। सब लोग बसों और टैम्पों ट्रैवेलर में बैठकर चलने को तैयार हो गए। क़ाफ़िला चला।

लोकेशन एकदम वीरान हरे-भरे मैदान की तरह थी। वहाँ लाइट थी नहीं इसलिए जनरेटर का बन्दोबस्त किया गया था। लेकिन जनरेटर आवाज़ बहुत करता था इसलिए वहाँ से कनेक्शन लेकर शूटिंग स्पॉट तक लाइट्स लगाने के लिए लम्बे-लम्बे तारों की व्यवस्था की गई थी।

गाने के एक अंतरे में आँधी-तूफ़ान दिखाना था इसलिए बड़े-बड़े फ़ैन्स का बन्दोबस्त किया गया था। ताकि वे बड़ी तेज़ हवा फेंक सकें जिससे सीन में लगे कि तूफ़ान आया हुआ है। आँधी चल रही है। दूसरे अंतरे में धुआँ-धुआँ-सा दिख़ाना था जैसे कोहरा है इसलिए उसके लिए 'फ़ॉग मशीन' का बन्दोबस्त किया गया था। इस मशीन में मिट्टी का तेल डलता था और पंप से हवा भरी जाती थी। गैस बिना जले सफ़ेद-सफ़ेद धुँए की तरह निकलती थी इसलिए शॉट में ऐसी अनुभूति होती थी कि जैसे घना कोहरा छाया हुआ है।

तीसरे अंतरे में बारिश होनी थी, बिजली चमकनी थी इसलिए 'रेन-मशीन' का बन्दोबस्त किया गया था ताकि शॉट में जब ऑर्डर किया जाए तो मशीन पानी बरसाए। ऐसी लाइट्स का भी बन्दोबस्त किया गया था कि जिनसे लगे कि बिजलियाँ कड़क रही हैं। शूटिंग क़रीब सात दिन चलने वाली थी।

आउटडोर में शिफ़्ट सूरज निकलने से लेकर सूरज ढलने तक होती है। जिसे आमतौर पर डेढ़ शिफ़्ट माना जाता है। आउटडोर का यही रिवाज है। सबकी रोज़ी और सामान का किराया भी इसी हिसाब से लगाया जाता है। शिफ़्ट शुरू होने का समय लोकेशन पर पहुँचने से शुरू होता है। इसमें सबसे ज़्यादा मुश्किल लाइट वालों की होती है। सारी लाईट्स, स्टैंड, कटर, तार, कनेक्शन बोर्ड सब जमा करो, बस में रखो तब लोकेशन पर चलो— इस सबमें ही उनके घंटे-डेढ़ घंटे लग जाते हैं। लाइट वाले फ़िल्म में सबसे पहले तैयार होना शुरू करते हैं और सबसे बाद में आराम से बैठते हैं। लोकेशन पर तो फिर

भी ठीक है कि सामान और लोग सब एक जगह होते हैं। जब बम्बई में शूटिंग हो तो सुबह नौ बजे लोकेशन पर पहुँचने के लिए लाइटमैन घर से क़रीब चार-पाँच बजे निकलता है, स्टूडियो या ऑफ़िस जाता है— जहाँ लाइट्स रखी होती है। वहाँ सब सामान छाँटता है और लेता है। वहाँ से टैक्सी या गाड़ी में लोकेशन पर पहुँचता है। और शूटिंग के दौरान भी लाइट वालों को लाइट एडजस्ट करने के लिए भागते-दौड़ते रहना पड़ता है। काम मुश्किल भी है और मुस्तैदी का भी है।

दूसरे दिन सुबह-सुबह जब सब लोग लोकेशन पर पहुँच गए तो इंतज़ार होने लगा आशा जी और सलिल का। चाय नाश्ता लोग होटल से ही करके चले थे लेकिन फिर भी चाय तो फ़िल्म वाले पानी की तरह पीते रहते हैं इसलिए वो तो लोकेशन पर बन ही रही थी। इतने में आशा जी आ गईं। फिर आया सलिल— सर दबाता हुआ। कैमरामैन ने पूछा— "क्या हुआ सर?" बोला, "यार! रात भर सो नहीं पाया... नई जगह है न... इसलिए नींद नहीं आई।"

कैमरा वालों ने बड़ी हमदर्दी जताई और कहा, "टेक इट ईज़ी सर!" लेकिन जैसे ही सलिल गया कैमरामैन ने असिस्टेंट से कहा, "साला! बोलता है नई जगह में नींद नहीं आई... इसकी माँ का...! जब ये साला फ़ुटपाथ पे सोता था तब नींद आती थी! हँ हँ हँ हँ...! ये कहो कि पाँच सितारा होटल के गबरू गद्दे पर सोने की आदत नहीं है। हँ हँ हँ हँ!" असिस्टेंट ने भी मज़ा लिया और प्रोडक्शन वालों ने भी। प्रोडक्शन मैनेजर ने अपने स्पॉट ब्वॉय से कहा, "ओए! एनासिन की पाँच-छः गोलियाँ ले आ... अभी साला शॉट में बोलेगा— 'सर में दर्द है, डायलॉग याद नहीं हो रहा।' हँ, हँ, हँ हँ!"

क्योंकि तब तक वैनिटी वैन शुरू नहीं हुए थे इसलिए लोकेशन पर खुले में कहाँ तो मेकअप होता और कहाँ कॉस्ट्यूम चेंज होता और वो भी हीरोइन का। कोई छोटी-मोटी आर्टिस्ट या एक्स्ट्रा हो तो और बात! इसलिए तय यह हुआ था कि आशा जी अपना मेकअप होटल से ही करवा कर निकलेंगी और कॉस्ट्यूम भी वहीं चेंज करके आएँगी। गाड़ी उनकी एयरकन्डीशंड थी ही। थोड़ा बहुत टच-अप लोकेशन पर हो जाएगा।

शॉट था कि बड़ी ज़ोर की आँधी आई हुई है। पत्ते उड़ रहे हैं। पेड़ हिल रहे हैं। चिड़ियाँ और जानवर घबरा कर भाग रहे हैं। पुराने जन्मों की बिछड़ी हुई दो आत्माएँ जैसे ज़मीन पर अवतरित हो रही हैं। वग़ैरह... वग़ैरह...! बड़े-बड़े पँखे लगाए गए, बीसियों टोकरी भर के सूखे पत्ते मँगवाकर पँखों के सामने से उड़ाये गए। चिड़ियों और जानवरों के शॉट के लिए 'स्टॉक-शॉट' का बन्दोबस्त किया जा चुका था। फिर दूर कहीं आशा देवी की छवि दिखाई देती थी। छवि दिखती और खो जाती। सलिल उसे देखता, फिर जब खो जाती तो उसे ढूढने के लिए और सघन तूफ़ान में घुसता जाता। गाना 'ड्वेट' था— यानी हीरो और हीरोइन दोनों को गाना था। गाना क्या था। गाने के लाउडस्पीकर से बजने पर होंठ हिलाने थे। बाद में पिक्चर और साउंड जब साथ चलते तो दर्शक को लगता कि यह गाना हीरो और हीरोइन ख़ुद गा रहे हैं। सीन कई शॉट्स

में विभक्त था। सब रेडी हो गया तो शुरुआत के लिए रस्म के तौर पर नारियल फ़ोड़ कर कैमरे की पूजा करनी थी।

— "नारियल ला बे!" प्रोडक्शन वाला चिल्लाया।

— "लाया सर!" स्पॉट ब्वॉय तैयार था।

— "और हार।"

— "हार भी है सर।"

कैमरे वाले ने कैमरे पर हार डाला।

— "सर! लोकेशन का पहला शॉट है।" कैमरामैन ने दीवान साहब से कहा, "आज नारियल आप फ़ोड़िये सर... आपके हाथ से शुभ होता है।"

दीवान साहब ने नारियल फ़ोड़ा।

— "चल कटर लगा, रिफ़लेक्टर दे।" असिस्टेंट कैमरा ने लाइटमैनों को बताया। लाइट की ज़रूरत दिन में लोकेशन पर इस शॉट में थी नहीं। इसलिए रिफ़लेक्टर लगाकर काम चलता था।

जब सब ने अपनी-अपनी पोज़ीशन ले ली तो रामगोपाल जी शॉट लेने को तैयार हुए।

— "स्टार्ट साउंड।"

— "कैमरा।"

— "स्लेट।"

— "दीवान प्रोड्क्शन्स, लाजो की आएगी बारात, सीन 20, शॉट 15, टेकवन।"

— "एण्ड... एक्शन!"

शॉट शुरू हुआ। सब कुछ ठीक-ठाक हो गया।

— "कट! प्रिंट इट।"

— "एक मिनट... फ्रीज" स्टिल फ़ोटाग्राफ़र ने शॉट का फ़ोटो खींचा। डायरेक्टर के असिस्टेंट ने कन्टीन्यूटी शीट में नोट कर लिया। रामगोपाल जी और कैमरामैन दूसरे शॉट के सैटअप पर लग गए। आशा जी और सलिल अपनी-अपनी जगह आकर बैठ गए। मेकअप वाले ने उनका पसीना पोंछ कर टच-अप करना शुरू कर दिया।

— "आपके मूवमेंट्स बहुत अच्छे हैं।" आशा देवी ने सलिल से कहा।

— "अरे...! आपसे अच्छे कैसे हो सकते हैं... कहाँ आप इतनी सीनियर इतनी तजुर्बेकार और कहाँ मैं नया-नया।"

— "अजी छोड़िये... हिट पिक्चर के हीरो हैं आप। अपने आपको इतना लो प्रोफ़ाइल भी मत रखिये।"

— "थैंक्यू! आपने कहा तो मेरे लिये सर्टिफ़िकेट हो गया। थोड़ी देर ख़ामोशी रही। जैसे दोनों एक-दूसरे को तौल रहे हों।

— "खाना आप कमरे में ही खाती हैं?"

— "और क्या करूँ... मम्मी भी साथ में हैं तो उनको लेके कहाँ गार्डन में आऊँ।"

— "आज शाम को अगर गुस्ताख़ी न हो तो खाना हमारे साथ खाइये।"

— "कमरे में?"

— "नहीं, नहीं... एक नया रेस्तराँ खुला है यहाँ। बड़ा नाम सुना है उसका। वहीं चलेंगे।"

— "ठीक है।"

— "आठ बजे तक?!"

— "आठ बजे तक। एक कॉल कर लीजिएगा।"

— "हन्ड्रेड परसेंट।"

फिर शूटिंग शुरू हो गई और दोनों को बुला लिया गया। और वो दिन तमाम हुआ।

दूसरे दिन तीसरा अंतरा फ़िल्माया जाना था क्योंकि जनरेटर दो दिनों के लिए ही बुक किया गया था। तूफ़ान के लिए फ़ैन चलाने के लिए और बारिश दिखाने के लिए लाईट की ज़रूरत थी सो जनरेटर बुक किया गया था। कोहरे वाले सीन में जनरेटर की कोई ज़रूरत नहीं थी इसलिए उसे सिर्फ़ दो दिन के लिए ही बुक किया गया था और इस वजह से तीसरा अंतरा दूसरे दिन ही कर लेना था। आशा देवी की साड़ी भीगी-भीगी बदन से लिपटी जा रही थी। सलिल की क़मीस बदन से चिपकी थी और सर गीला हो चुका था। वह बार-बार छींके जा रहा था। प्रोडक्शन वाला तौलिया लिए बग़ल में खड़ा था। बार-बार हीरो हीरोइन से उनके भीगने पर माफ़ी माँगी जा रही थी और कहा जा रहा था कि बस ज़रा देर की और बात है। रात को खाने के बाद सलिल और आशा देवी एक-दूसरे से ज़रा ज़्यादा खुल चुके थे। इसलिए बातचीत की औपचारिकता ख़त्म हो चुकी थी। अब दोस्ती हो गई थी।

बिजली चमकाई गई। पानी बरसाया गया। सीन था कि बिजली चमके तो हीरोइन डर के मारे हीरो से बेसाख़्ता लिपट जाती है और हीरो उसे गले लगा लेता है और आसमान की ओर देखता है। बस! शॉट आसान था। लेकिन कभी पानी ठीक से नहीं बरसता था, कभी बिजली सही वक़्त पर नहीं चमकती थी, कभी आर्टिस्ट की पोज़ीशन गड़बड़ हो जाती थी। बहरहाल, करते-करते कोई छः सात टेक हो गए।

— "भीगे बदन हम लोग अगर इसी तरह गले लगते रहे तो फिर तो... समझ रही हैं न आप!"

— "लड़कों जितनी समझ कहाँ होती है लड़कियों में।"

— "वैसे ऐसे सीन्स में आता मज़ा है... बाहर से ठंडक है, अन्दर से गर्मी है।"

— "और तमाम लोग चारों तरफ़ हैं।"

— "यही तो रोना है। दिल तो मेरा है कि एक बार अकेले में भी ऐसा हो।"

— "बिजली चमके... पानी बरसे!"

फिर दोनों हँस पड़े और टेकिंग की हाँक भी रामगोपाल जी ने लगा दी।

शाम को माँ अपने कमरे से निकलकर आशा जी के कमरे में आ गई।

— "बेटी! सलिल से मिलती ही नहीं तू...।"

— "मिली मैं। शूटिंग तो कर रही हूँ साथ में।"

— "अच्छा चोपड़ा साहब एक नई पिक्चर की लोकेशन देखने सुना है खण्डाला आए हुए हैं। अमीर होटल में ठहरे हैं। उनसे मिल तो ले।"

— "चोपड़ा साहब बहुत चिपकू हैं यार!"

— "अब जो भी हैं... हैं तो बहुत बड़े प्रोड्यूसर... जा जा मिल ले... अगली पिक्चर फ़ाइनल करने वाले हैं। मैं तुझे ले के चलती हूँ। शाम को।"

कामयाब हीरोइन की माता जी ने एपॉइंटमेंट लिया था। मिलता कैसे नहीं। चोपड़ा साहब ने डिनर पर बुला लिया। इधर-उधर की बातें हुई फिर न जाने आशा देवी और चोपड़ा साहब में क्या तय हुआ आशा ने अपनी माँ से कहा—

— "अच्छा माँ! तुम चलो मैं चोपड़ा जी से स्क्रिप्ट डिसकस करके आती हूँ।"

— "ठीक है!" कहकर आशा की माँ ड्राइवर के साथ अकेली वापस चली आईं। यही तो वे चाहती थीं कि अच्छी तरह डिसकशन हो और आशा देवी को चोपड़ा साहब अपनी नई पिक्चर दे दें। वे पिक्चर भी अच्छी तरह बनाते हैं सो हिट होने का चांस भी है और पैसे तो भरपूर मिलेंगे ही। बेटी से ज़्यादा माँ खुश थी।

रात को देर से जब आशा लौटी तब सलिल उसका इन्तजार कर रहा था। लॉबी में। रात काफ़ी हो गई थी इसलिए लॉबी में कोई था नहीं। सब सो चुके थे।

— "आ गईं आप! नींद नहीं आ रही थी सोचा आपके साथ कॉफ़ी पियेंगे।"

— "मैं बहुत थक गई हूँ...!"

— "कॉफ़ी से थकान मिट जाएगी।"

बहरहाल कॉफ़ी शॉप में जाकर दोनों ने कॉफ़ी पी और जब अपने-अपने कमरों में लौटने को हुए तो उस वक़्त रात का ढाई बज चुका था। बातचीत और कुर्बतें ऐसी नौबत तक आ चुकी थीं कि आशा देवी के दरवाज़े पर बाई-बाई करते समय सलिल ने आशा को बाक़ायदा बाहों में भरकर उसका चुम्मा ले लिया।

— "क्या करते हो?" आशा ने हल्के से इधर-उधर देखकर फुसफुसाया।

— "जो बहुत पहले करना चाहिए था और करने का मौक़ा नहीं मिला। ...बाई!"

— "बाई!"

आशा देवी खुश थीं भी और नहीं भी। चोपड़ा साहब ने अपनी अगली पिक्चर देने का वायदा कर दिया था। बंबई में आशा का सैक्रेटरी जाकर कॉन्ट्रैक्ट ले आएगा, एडवाँस भी ले आएगा। इधर एक नौजवान कामयाब हीरो उसके इश्क़ में गिरफ़्तार होता जा रहा है। लेकिन आशा खुश भी थीं और नहीं भी। क्योंकि ज़िन्दगी तो उसकी इसी तरह ही गुज़रती थी। पैसा, शोहरत, दौलत, यश सभी कुछ तो था। कभी-कभी ख़्याल आता था उसे कि एक दिन कभी शायद ऐसा न रहे तो। 'तब की तब देखी जाएगी!'

ढाई बजे के बाद सोये थे तो सुबह तो उठना, ज़ाहिर है, मुश्किल था। लोकेशन पर सब पहुँच गए। हीरो और हीरोइन पहुँचे क़रीब साढ़े आठ तक। देर से काम शुरू हुआ। लेकिन उस दिन काम अच्छा भी हुआ और सपाटे से भी। हालाँकि इसमें हीरो हीरोइन का कोई कमाल नहीं था क्योंकि शॉट में ज़्यादातर कोहरा-ही-कोहरा था इसलिए ज़्यादातर

शॉट्स एक बार में ही ओ. के. हो गए थे। एक-आध में दो या तीन टेक हुए हों तो हुए हों।

जब बंबई लौटने का वक़्त आया तो आशा और सलिल में तय यह हुआ कि वो दोनों एक साथ एक ही गाड़ी में जाएँगे। आशा ने अपनी माँ को ड्राइवर के साथ वापस भेज दिया। माँ खुश थी कि एक कामयाब हीरो के साथ उसकी हीरोइन बेटी का मेल-जोल बढ़ रहा है। फिर सलिल ने अपने ड्राइवर को भी उसी गाड़ी में भेज दिया। उसने कहा गाड़ी वो खुद चला कर लाएगा। खण्डाला कोई दूर थोड़े ही है।

घाट से उतरते वक़्त ट्रैफ़िक था। हालाँकि निकले सुबह जल्दी थे लेकिन पिछली रात के जो ट्रक फँसे थे वे अभी तक निकल नहीं पाए थे इसलिए पनवेल तक पहुँचते-पहुँचते बारह बज गए। पनवेल से रास्ता खुला था लेकिन सँकरा था।

— "यहाँ तो गाड़ी ज़रा भगाओ यार... क्या बुड्ढ़ों की तरह ढचर-ढचर चल रही है।"

— "बुड्ढ़ों का बड़ा तजुर्बा है।"

— "सभी तो साले इण्डस्ट्री में बुड्ढ़े भरे हैं।"

— "कभी हमारी तरफ़ भी नज़र करते।"

— "पहले गाड़ी तो भगाओ, यार... देखें तुम्हारी जवानी की भी क्या रफ़्तार है?"

— "ये बात!... तो लो!"

और गाड़ी ने भागना शुरू कर दिया।

— "और तेज़... और तेज़...!" बग़ल में बैठी आशा सलिल को शह देती जाती और सलिल एक्सीलेटर पर पैर और दबाता जाता।

नई बंबई उस समय प्लानिंग स्टेज पर थी। गिट्टियाँ पड़ गई थीं। सड़क बन रही थी। एक चट्टान से तेज रफ़्तार गाड़ी टकराई, उसके रेडियेटर से उबलता हुआ पानी फ़व्वारे की तरह ऊपर उड़ने लगा और गाड़ी थम गई। चोट हालाँकि किसी को नहीं लगी लेकिन एक शॉक ज़रूर लगा और फिर सवाल ये उठा कि अब बीच सड़क पर मदद किससे माँगी जाए। लेकिन ये मुश्किल भी भगवान ने आसान कर दी क्योंकि यूनिट के कुछ लोग जो टैम्पों ट्रैवेलर में आ रहे थे वे ज़रा से ही पीछे थे। ये दोनों उनकी गाड़ी में वापस आ गए। सलिल की गाड़ी प्रोडक्शन के लोग 'टो' करके मँगवा लेंगे।

11

– "लेकिन इस फ़िल्म में ऐसा कोई रिफ़रेन्स मैडम जी या सरकार के ख़िलाफ़ है ही नहीं।"

– "रिफ़रेन्स से क्या मतलब? आपने साड़ी हीरोइन को ऐसी पहनाई है जैसी कि मैडम पहनती है। बाल भी आपने वैसे ही रखे हैं। पूरे काले और बीच में एक स्ट्रीक सफ़ेद। तो आपका क्या ख़्याल है हम सैंसर वाले बेवक़ूफ़ हैं। इतना भी नहीं समझते कि आप कह क्या रहे हैं। ...देखिए ... आप फ़िल्म वाले ये नहीं समझते कि फ़िल्म जो है वह विजुअल मीडियम है। जो दिखाया जाता है वह महत्व का है। समझे आप!"

– "तो सर... अब तो रिलीज़ डेट फ़िक्सड है। पब्लिसिटी हो चुकी है। डिस्ट्रीब्यूटर से पैसा मैं ले चुका हूँ... अगर ये पिक्चर फँस गई या डिले हो गई तो मैं तो बर्बाद हो जाऊँगा।"

– "तो मैं क्या करूँ!"

– "कुछ तो कीजिए। ...आप जो चाहें।"

– "आप मुझे रिश्वत दे रहे हैं? मैं आपको जेल करवा सकता हूँ। जनाब, इमरजेन्सी का ज़माना है। मज़ाक़ समझते हैं आप।"

– "अरे सर... आप ग़लत समझ रहे हैं।"

– "जाइये... अब जाइये... सैंसर बोर्ड का यही फ़ैसला है कि आप या तो हीरोइन का कॉस्ट्यूम और मेकअप बदल दीजिए या फिर वो सीन काट दीजिए।"

– "पूरा गाना है सर।"

– "तो मैं क्या करूँ।"

– "तो कौन कर सकता है सर।"

– "अपील कीजिए।"

– "अपील से कुछ होने वाला नहीं है।"

– "तो दिल्ली से या मन्त्रालय से कोई अगर कह दे कि ये ठीक है तो ठीक है।"

– "मन्त्रालय सैंसर बोर्ड के ऊपर है?"

– "अरे यार सैंसर बोर्ड मिनिस्ट्री के अंतरगत है न... तो मन्त्रालय के जितने वरिष्ठ है सब मालिक हैं।"

वर्मा जी से आगे कुछ कहते नहीं बना। न कुछ कहने का फ़ायदा उनको लगा। वे वहाँ से उठकर चले आए।

ये फ़िल्म वर्मा जी ने बड़े अरमान से बनाई थी। पढ़े लिखे आदमी थे। हिन्दी साहित्य को फ़िल्मों में उतारने के क़ायल थे। शिवानी के एक उपन्यास पर बहुत दिनों से उनकी नज़र थी। पिक्चर एनाउंस तो की थी चार साल पहले लेकिन फ़ाइनेंस के कारण बीच में मामला अटक गया। अब पिक्चर रेडी हुई तो इमरजेंसी लग गई और सैंसर वाले पास करने में ज़्यादा सख़्त हो गए।

वर्मा जी जब अपनी गाड़ी में बैठकर वालकेश्वर के व्हाईट हाउस वाले सैंसर ऑफ़िस से वापस आने लगे तो उन्हें लगा जैसे उसके सामने भरा-पूरा-फ़ैला समन्दर नहीं है– अन्धेरा है। और उस अंधेरे में वो घिरते जा रहे हैं। उनका वजूद खोता जा रहा है और उनकी आत्मा उन्हें कोसती जा रही है कि आख़िर फ़िल्म बनाने का काम ही जीवन में क्यों इख़्तियार किया। कमबख़्त! कोई सरकारी नौकरी क्यों नहीं कर ली। आराम से जीवन कटता और बुढ़ापा सुखी होता।

– "क्या बोले सर?" ड्राइवर के सवाल ने वर्मा जी को जैसे जगाया।

– "गाना काटो बोले।"

– "गाना तो बहुत अच्छा है सर। मीना जी भी उस दिन बहुत तारीफ़ कर रही थीं गाने की।"

मीना फ़िल्म की हीरोइन थी जिस पर गाना फ़िल्माया गया था।

– "एक काम कर!" अचानक वर्मा जी को कुछ सूझा, "मीना जी के घर पर ले।"

– "वो अभी घर पर होंगी?"

– "हाँ! सुबह बात हुई थी वो घर पर ही है। चल! ... यहीं तो है उसका घर पेडर रोड पर।

गाड़ी जसलोक अस्पताल के सिग्नल से दाहिने मोड़ दी गई। अल्टामाउंट रोड पर। वहाँ से बायें मुड़ने के बाद तीसरी बिल्डिंग की चौथी मंज़िल पर तीसरा फ़्लैट मीना जी का था। वर्मा जी पहुँचे तो वे भले ही आराम कर रही हों नौकर ने कहा, "मैडम फ़ोन पर हैं। आप बैठिये।"

आधे घंटे के बाद जब मैडम आईं तो उन्होंने तमाम मुस्कुराहटें बिखेरते हुए माफ़ी के पुल बाँध दिये और नौकर को चाय लाने की ताक़ीद कर दी। बातचीत का दौर शुरू हुआ। वर्मा जी ने बताया कि सैंसर ने साफ़ कर दिया हैं कि अगर गाना नहीं काटा गया तो सर्टिफ़िकेट नहीं देंगे। मीना जी सोच में पड़ गईं। पिक्चर अच्छी बनी थी और इसमें उनका रोल भी बहुत हट के था। ये पिक्चर उनके कैरियर के लिए बहुत अहम थी। अभी किया ही क्या था– कुल दो पिक्चरें तो की थीं उन्होंने और दोनों में उनकी तारीफ़ थी। ये पिक्चर और हिट हो जाए तो एक तो उनकी गिनती 'एक्ट्रेस' में हो जाएगी और दूसरे हो सकता है कि वो नम्बर वन की अधिकारी भी हो जायें।

— ''रास्ता क्या है?'' मीना जी ने चाय का प्याला वर्मा जी की ओर सरकाते हुए पूछा।

— ''वो बोलते हैं मन्त्रालय का कोई वरिष्ठ सिफ़ारिश कर दे तो कुछ हो सकता है।''

— ''तो पूछिये मन्त्रालय वालों से। वो क्या कहते हैं।''

— ''अरे इमरजेंसी का ज़माना है यार... कोई रिश्वत भी नहीं लेता। सब क़ायदे क़ानून से चलता है।''

— ''रिलीज़ तो फ़िक्सड है।''

— ''यही तो प्रॉब्लम है।''

— ''मेरे एक कज़िन हैं दिल्ली में। वो शायद राजनीति में भी दख़ल रखते हैं। ठहरिये ... मैं उनको फ़ोन करके देखती हूँ।'' वर्मा जी ने शुक्रिया माना। मीना ने फ़ोन लगाया। इधर उधर की बेकार ख़ैरियत ख़ैर-अज़-अल्ला के बाद मुद्दे की बात शुरू हुई। 'कज़िन' ने कहा वो किसी से बात करेंगे लेकिन इमरजैंसी का ज़माना है इसलिये किसी भी प्रकार का वादा नहीं किया जा सकता। सभी लोग डरे हुए हैं। सिर्फ़ क़ानून से काम करेंगे। वर्मा जी और मीना जी की मीटिंग इस पर बर्ख़ास्त हुई कि कल तक इंतजार किया जाए।

कल ख़बर ये आई कि दिल्ली से कोई वरिष्ठ बंबई आ रहा है— किसी मीटिंग के लिए। थोड़ी ही देर रूकेगा क्योंकि शाम को उसकी दिल्ली में फिर एक दूसरी मीटिंग है। काम करने को तो तैयार है लेकिन उसकी दो शर्तें हैं। एक कि वो फ़िल्म देखेगा कि आख़िर ऐतराज़ के क़ाविल क्या है और दूसरे कि उससे मिलने सिर्फ़ और सिर्फ़ मीना जी ही आएँ और वे जब आएँ तो उस वक़्त उस कमरे में और कोई न हो। ख़बर दिल्ली वाले 'कज़िन' ने मीना जी को सुनाई। मीना जी के मुँह से दबी ज़बान से सिर्फ़ ''कुत्ता भैन...'' निकला। फिर उन्होंने वर्मा को फ़ोन लगाया और कहा कि इस वरिष्ठ को फ़िल्म का वो गाना दिखाने का बन्दोबस्त किया जाए— एयरपोर्ट वाले सैन्टॉर होटल के कमरे में ही दूसरे दिन सुबह ग्यारह बजे!

साढ़े बारह बजे से ज़रा बाद रीजनल ऑफ़ीसर सैंसर बोर्ड के पास फ़ोन आया। उसको समझाया गया कि फ़िल्म के गाने में ऐसा तो कुछ 'ऑब्जैक्शनल' नहीं है। लेकिन फिर भी 'आप देख लीजिये'। वर्मा जी कमरे में फ़िल्म दिखाने के बाद नीचे लॉबी में बैठे रहे। मीना जी इस 'वरिष्ठ' के साथ ऊपर ही रहीं।

और इस 'वरिष्ठ' ने जब उनको छूने की कोशिश की तो वह पीछे हट गईं।

— ''ऊँ... हूँ... पहले फ़ोन कीजिए।''

— ''कर दूँगा।''

— ''ऊँ... हूँ... पहले फ़िल्म पास करवाइये।''

'वरिष्ठ' को पहले रीज़नल ऑफ़िसर को फ़ोन करना पड़ा। तब मीना जी मेहरबानी पर उतरीं।

जब ये 'वरिष्ठ' और उनकी सिक्योरिटी चले गए तो मीना जी मुस्कुराती हुई नीचे आईं और फिर वर्मा जी और मीना जी सैन्टॉर की कॉफ़ी शॉप में चले गए जहाँ उन्होंने

जल्दी-जल्दी कुछ ठँडा पिया। वर्मा जी ने अपने ऑफ़िस फ़ोन करके अपने प्रोडक्शन वाले को कह रखा था कि सैंसर ऑफ़िस की ख़बर उनको यहीं कॉफ़ी शॉप में फ़ोन करके दे। उस लड़के का फ़ोन आ गया कि कल सर्टिफ़िकेट मिल जाएगा तब दोनों की जान में जान आई। वर्मा जी के चेहरे पर चमक आ गई और उन्होंने मीना जी को गले लगाते हुए कहा, ''मैं तुम्हारा एहसान ज़िन्दगी भर नहीं भूलूँगा।''

— ''एहसान तो ठीक है वर्मा जी...ये लीजिए,'' मीना ने एक स्टाम्प पेपर पर टाईप किया हुआ दिखाते हुए कहा, ''इस पर आप भी साईन कर दीजिए।''

वर्मा जी चौंके। ''ये क्या है?''

— ''ये ये है कि इस पिक्चर की 10 प्रतिशत ओवरफ़्लो आप मुझे देंगे।''

— ''व्हाट?''

— ''जी!''

— ''ये ब्लैकमेल है।''

— ''तो वो ऊपर क्या था?''

वर्मा जी ने हँस कर टालना चाहा— ''अरे छोड़ो यार... साईन क्या करना... मैं वैसे ही तुम्हें दे दूँगा।''

— ''सैंसर सर्टिफ़िकेट अभी मिला नहीं है वर्मा जी।''

वर्मा जी ने मन-ही-मन गालियाँ देते हुए चश्मा निकाला और बैरे से पैन माँगकर स्टॉम्प पेपर पर दस्तख़त कर दिये। मीना ने कागज़ अपने पर्स में रखते हुए उन्हें एक बड़ा ज़बरदस्त फ़्लाईंग किस दिया।

हवा फैलने लगी थी कि पिक्चर को सैंसर ने रोक दिया है लेकिन अख़बार वालों को बुलाकर इस 'अफ़वाह' का खण्डन कर दिया गया और सर्टिफ़िकेट दिखाकर कहा गया— ''ये देखो यू-सर्टिफ़िकेट।'' अख़बार वालों ने वर्मा जी की बात मानकर 'अफ़वाह' का खण्डन छाप दिया। रिलीज़ अपने शेड्यूल पर हो गई। पिक्चर चल तो गई लेकिन जिसे 'हिट' कहते हैं वो नहीं हुई। हिट नहीं होगी तो मीना जी नम्बर वन की स्टार कहलाने की हक़दार कैसे होंगी? ओवरफ़्लो कहाँ से आएगा? और ओवरफ्लो आएगा नहीं तो मीना जी को क्या मिलेगा। इसलिए मीना जी ने फिर सीधा फ़ोन लगाया दिल्ली। अब तो रास्ता खुला था।

— ''इस फ़िल्म में मैडम के करैक्टर का ज़िक्र है। उनकी गरीमा को दर्शाया गया है। इस फ़िल्म को तो ज़्यादा-से-ज़्यादा दर्शकों को देखना चाहिए।''

— ''मतलब क्या है... क्या करना चाहिए?''

— ''टैक्स फ़्री करना चाहिए तब तो ज़्यादा लोग देखेंगे।''

टैक्स फ़्री का मतलब कम टिकट। कम टिकट मतलब ज़्यादा दर्शक। ज़्यादा दर्शक मतलब ज़्यादा कमाई। ज़्यादा कमाई तो मीना जी की जेब में भी आएगा।

— ''कल का क्या प्रोग्राम है?''

— ''एक शूटिंग है।''

– "मैं कल गोवा में हूँ... आ सकती हो?"

– "कहाँ?"

– "फ़ोर्ट अग्वाडा... दोपहर बाद।"

दूसरे दिन सुबह की फ़्लाइट से मीना जी की गोवा की टिकट आ गई। उन्होंने प्रोड्यूसर को फ़ोन किया कि उनके सर में बहुत दर्द है, वे आज शूटिंग पर नहीं आ पाएँगी। फिर उन्होंने बिल्डिंग के नीचे एक काली-पीली टैक्सी मँगवाई जिसमें वे बुर्क़ा पहनकर एयरपोर्ट चली गईं जहाँ से गोवा।

– "वर्मा जी ओवरफ्लो आने वाला है... ध्यान रखियेगा... मैं सैक्रेटरी भेज रही हूँ।"

– "अरे सौंणियो तुहाड्डा जबाब नहीं। तुस्सी ग्रेट हो।"

फ़ोन रखते साथ वर्मा जी की टोन बदल गई।

– "रँडी साली... दो कौड़ी की औक़ात और मुझ से ओवरफ़्लो में हिस्सा माँगती है।"

लेकिन पिक्चर टैक्स-फ़्री होने के बाद हिट हो गई थी। सबके पास पैसा आ रहा था। सबकी तस्वीरें सब तरफ़ थीं।

इसी के चलते फ़ोर्ट अग्वाडा गोवा में जब मीना जी पहुँचीं तो आधे कपड़ों में भूरा चश्मा लगाए एक गोरा मीना जी को देखकर सामने आ गया।

– "मीना? ... आर यू मीना? द ग्रेट इण्डियन फ़िल्म स्टार?"

मीना जी का सीना फूल गया और माथा ऊँचा हो गया। लेकिन उन्होंने त्यौरियाँ चढ़ा कर ही पूछना बेहतर समझा– "येस?"

– "ओ, आई एम योर ग्रेट फ़ैन... आई सी इण्डियन फ़िल्मस्।"

फिर गोरे ने टूटे लहजे से हिन्दी बोलना शुरू कर दिया– "मैंने आपकी दो तीन फ़िल्में देखी हैं और मैं आपको बहुत पसंद करता हूँ।"

मीना की मुस्कुराहट फ़ट ही तो पड़ी, "थैंक्यू!"

– "आप इधर ठहरी हैं?"

– "हाँ।"

"अभी मैं बीच पर जा रहा हूँ... मेरा योगा टीचर मेरा इंतजार में हैं... शाम को मिल सकता हूँ।"

– "ऑफ़ कोर्स!"

उसके बाद मीना जी तयशुदा कमरे में तयशुदा मुलाक़ात के लिये अपने परफ़्यूम की शीशी ख़ाली करती रहीं। गोरा शाम को रिसेप्शन पर तीन घंटे तक उनका इंतज़ार करता रहा और बार-बार लोगों से पूछता रहा, "है व यू सीन मीना... मीना जी?"

लन्दन का रहने वाला ये गोरा अफ़ग़ानिस्तान में बस गया था और वहाँ ये हिन्दी फ़िल्में भरपूर देखता था और इस इलाके की फ़िल्मों पर अख़बारों में लिखता था। साल में कम-से-कम दो बार ज़रूर गोवा के चक्कर लगाता था और हिन्दुस्तान से बेहद प्रेम करता था। तीन घंटों बाद जब उसका सब्र टूट गया और वो जाने लगा तो उसने किस दर्द से

रिसेप्शन के लड़के से कहा, "आई लाइक्ड हर... एक्चुअली आई माईट हैव जस्ट प्रोपोज़्ड टु हर टुनाइट।"

मीना की वापसी दूसरे दिन सुबह के हवाई जहाज़ से थी। गोवा एयरपोर्ट से बम्बई तक वो बुर्क़े में आईं और वो बुर्क़ा जब उतरा जब वो अपनी बिल्डिंग के अपने फ़्लैट में अन्दर नहीं चली गई। लेकिन इस बार वे ज़्यादा पावरफ़ुल, ज़्यादा कॉनफ़िडेन्ट होकर लौटी थीं। अब इस देश में उनसे कोई टक्कर ले के तो देखे!

आज के दिन उनकी शूटिंग नहीं थी। डबिंग थी। दो पिक्चरें जो फ़ाइनल पर थीं उनका काम पूरा होना था। अगले महीने रिलीज़। लेकिन दोनों साथ-साथ रिलीज़ न हों इसलिए दोनों के बीच एक महीने का अंतर रखा गया था। अब मीना को उम्मीद बँध चुकी थी कि उनका कैरियर और उनकी लाईफ़ दोनों उत्थान पर हैं और उन्हें अब कोई रोक नहीं सकता।

12

चोपड़ा साहब इण्डस्ट्री के पुराने खिलाड़ी थे। फ़िल्म का बिज़नेस अच्छी तरह समझते थे। ऐसे ही थोड़े वो इतने सालों से फ़िल्मों में टिके थे और ऐसे ही थोड़े उन्होंने यहाँ इज़्ज़त और दौलत कमाई थी।

उनकी सुनंदा और प्रदीप वाली फ़िल्म थोड़ी नरम गई तो क्या हुआ। पैसा थोड़े ही उसमें इनका लगा था। फिर भी इन्होंने उसमें कमाया ही था क्योंकि प्रोड्यूसर तो वे ही थे। और प्रोड्यूसर जब ही तक बादशाह है जब तक कि प्रोडक्शन चलता रहे।

अगली फ़िल्म में उन्होंने चँचल खन्ना को लिया था। साइन तो उन्होंने उसे जब से कर रखा था जब वो इण्डस्ट्री में आया था और उसके काम की अच्छी रिपोर्ट उनके पास पहुँची थी। फ़िल्म तो चँचल की बाद में हिट हुई, स्टार तो वो बाद में बना। हालाँकि इरादा उनका था आशा देवी को लेने का लेकिन क़ुदरत का साथ देखिये आशा देवी ख़ुद चलकर उनके पास खण्डाला में मीटिंग करने पहुँच गईं। उनकी फ़िल्म की शुरुआत हफ़्ते भर के अन्दर होनी थी। क्योंकि चोपड़ा जी पटकथा पर बहुत ज़ोर देते थे इसलिए पहले उन्होंने पटकथा रेडी करवाई थी, फिर उसके हिसाब से गाने लिखवाए और लय बद्ध करवाए थे। आजकल उनकी फ़िल्म के गानों की रिकॉर्डिंग चल रही थी। रिकॉर्डिंग में संगीतज्ञ / संगीत निर्देशक तो होते ही थे, स्टूडियो में हीरो, हीरोइन भी पहुँचते थे— ताकि जो गाने उन पर पिक्चराइज़ होने हैं उन्हें उनका अंदाज़ा लग सके। चँचल और आशा जी भी अपने-अपने गानों की रिकॉर्डिंग के समय पहुँच जाते थे। निर्देशक चोपड़ा जी ख़ुद थे और बहुत सफल निर्देशक थे इसलिए रोल या फ़िल्म के बारे में उनसे कोई सवाल न करता था, न सवाल करने की जुर्रत करता था।

चँचल अब स्टार बन चुका था इसलिए फ़िल्म के लिए उसकी 'डेटस' मिलने में थोड़ा 'एडजस्टमेंट' करना पड़ा वही आशा देवी के साथ भी हुआ लेकिन अब शूटिंग अगले हफ़्ते से शुरू होना तय हुआ था।

शूटिंग चोपड़ा साहब एक बार शुरू करते थे तो बिना ब्रेक के पूरी पिक्चर शूट कर डालते थे। इसलिए उनको 'बल्क-डेट्स' (एक साथ) चाहिए होती थीं।

एक दिन रिकॉर्डिंग के लिए चँचल तैयार होकर निकलने ही वाला था कि उसके घर पर फ़ोन आया। उसके प्राइवेट नंबर पर आया होता तो उसे ख़ुद उठाना पड़ता। लेकिन जनरल नंबर पर आया था इसलिए नौकर ने उठाया।

— "हाँ जी!" नौकर ने कहा।

— "चँचल खन्ना को फ़ोन दे।" उधर से आवाज़ आई।

नौकर के लिए इस तरह बोलना वाला नया था। उसने पूछा— "क्या?"

— "अबे चँचल खन्ना को फ़ोन दे।"

नौकर ने समझा कोई पागल है। उसने फ़ोन काट दिया। घंटी दोबारा बजी। एक बार तो नौकर ने भी जाने दिया कि छोड़ो कौन उठाये। लेकिन घंटी दो-तीन बार फिर बजी। तब उसने सोचा शायद कोई और भी फ़ोन कर रहा हो। लेकिन फिर वो ही आवाज़।

— "बोला न चँचल खन्ना को फ़ोन दे।"

— "साहब बाथरूम में हैं।"

— "तो बाथरूम में दे।"

— "आधे घंटे बाद करो।"

— "तेरी माँ का... अभी बात करवा साले।"

नौकर ऐसी भाषा और इस तरह फ़ोन करने वाले को पहली बार सुन रहा था। चँचल उसी समय अपने कमरे से सीढ़ियों से नीचे उतर रहा था। उसने पूछा— "कौन है?"

— "पता नहीं सर... कोई पागल है।"

चँचल चला गया रिकॉर्डिंग में और नौकर बिज़ी हो गया साफ़-सफ़ाई में। थोड़ी देर बाद फिर वो ही फ़ोन, वही आवाज़, वही टोन। इस बार उस आवाज़ ने नौकर को गाली दी, "अबे ओ भैये साले! चँचल खन्ना को फ़ोन दे नई तो साले घर आके तुझे पूर देंगे।" नौकर ने सोचा भाड़ में गई ऐसी वफ़ादारी जो गाली खिलवाए। उसने साफ़ कह दिया "साहब गए है रिकॉर्डिंग में। वहीं बात कीजिएगा।"

रिकॉर्डिंग फ़िल्म सैंटर ताड़देव में थी। रिकॉर्डिंग शिफ़्ट चार घंटे की थी। संगीतकार और गायक पहले ही रिहर्सल कर चुके होते थे। साजिंदों को वहीं स्टूडियो में 'बीट' के साथ सबकुछ समझा दिया जाता था। वो लोग वैसे भी प्रोफ़ेशनल्स थे— फ़ौरन समझ लेते थे। गायक और पूरा ऑरकेस्ट्रा साथ-साथ रिकॉर्ड होता था। किसी एक की ग़ल्ती हो जाए तो सब कुछ फिर से— दोबारा— रीटेक। चोपड़ा जी, संगीतकार, रिकॉर्डिस्ट, असिसटैंट्स, म्यूजिक अरेंजर और चँचल खन्ना सभी मौजूद थे। काम सुबह नौ बजे से शुरू होकर एक बजे ख़त्म होना था लेकिन रोशन लाल संगीतकार थे और सउद ख़ान गायक— दोनों मँझे हुए कलाकार। साजिंदे तो थे ही ए-क्लास। रिकॉर्डिंग बारह तक ख़त्म हो गई।

— "चल चँचल ऑफ़िस चलते हैं... खाना मेरे साथ खाना।"

— "प्लेज़र सर! आपके यहाँ तो घर से खाना बन के आता है।"

चोपड़ा साहब के ऑफ़िस में रोज़ाना क़रीब दस से पंद्रह लोगों का खाना बनकर आता था। चार-पाँच तो खाने वाले थे ही बाक़ी राइटर, मिलने वाले, स्टार वग़ैरह तथा और और

कोई आ जाए तो उनके लिए भी। कभी अगर ज़्यादा लोग आ गए तो उनके लिए ऑफ़िस में जो कुक था वह भुर्जी-पाव तो ला ही देता था।

ऑफ़िस में चोपड़ा जी के केबिन के पास ही उन्होंने एक लाउँज या कॉन्फ़्रेंस रूम जैसा बना रखा था। इसमें कम-से-कम बीस लोगों के बैठने की व्यवस्था थी। वहीं सब जमा हो जाते थे। वहीं खाना खाते थे। खाना खा ही रहे थे, गप्पें हो ही रही थीं, कि चँचल खन्ना का सैक्रेटरी बड़ी जल्दी में आया और उसने चँचल के कान में कुछ फुसफुसाया जिसके बाद चँचल के चेहरे से हँसी उड़ गई, नेवाला हलक़ में अटक गया और उसने फ़ौरन जाने की इजाज़त माँग ली।

– "अरे सुन... तू भी खाना खाता जा।" चोपड़ा जी के मैनेजर ने सैक्रेटरी से ताक़ीद की।

लेकिन वो दोनों ज़रा जल्दी में थे। दोनों चले गए।

– "ये क्या माजरा है... तफ़सील से बता।" चँचल ने गाड़ी में बैठते हुए अपने सैक्रेटरी से पूछा।

– "चँचल जी... समद ख़ान का नाम तो सुना होगा आपने भी...।"

– "समद ख़ान सुना है, लेकिन वो तो शायद हफ़्ता लेने वाला और स्मगलर है। ...उसका मेरे से क्या लेना-देना यार।"

– "वो पिक्चर बना रहा है... वो तो पिक्चर बनाता रहता है, वैसे भी... नहीं तो अपना पैसा कहाँ लगाएगा...! ये पिक्चर जो वो बना रहा है उसका प्रोड्यूसर है फ़िरोज पत्रा वाला। समद ख़ान चाहता है इस पिक्चर में हीरो आपको लिया जाए।"

– "तो उसके लिए इतने बेहूदा फ़ोन और धमकी वाली बात करने की क्या ज़रूरत है। जहाँ औरों की पिक्चरें करते हैं इसकी भी कर लेंगे। अपने को क्या पत्रा वाला और क्या बाल्टी वाला। ऐं!?"

– "इतनी आसान बात नहीं है न... वो चाहता है कि सारी डेट्स आप इनको दे दें। शूटिंग अगले हफ़्ते कश्मीर में शुरू होने वाली है।"

– "अगले हफ़्ते!... तुमने कहा नहीं कि अगले हफ़्ते तो चोपड़ा साहब की पिक्चर कर रहा हूँ यार। नॉनसेंस! ये नहीं हो सकता। मैं चोपड़ा साहब की पिक्चर नई छोड़ रहा यार। चोपड़ा जी बनायेंगे मेरे कैरियर को बूस्ट मिलेगा। देखा, क्या गाना है! एकदम शम्मी कपूर स्टाइल... मैं जब झूमूँगा न उसपे तो लोग शम्मी कपूर को भूल जाएँगे...! न... न... दिस इज़ नॉट पॉसिबिल। मना कर दे।"

– "मैं आपकी फ़ोन पे बात करा देता हूँ सर। आप ही मना कर देना।"

घर पहुँचकर पत्रा वाला को फ़ोन लगाया गया। उसको सिचुएशन समझाई गई। वो भी दो एक पिक्चरें बना चुका था इसलिए एक्टर की मजबूरी समझता था। लेकिन प्रोड्यूसर चाहे वो लाख हो पैसा तो समद भाई का था न। तो असली प्रोड्यूसर तो समद ही था न! पत्रा वाला ने फ़ोन समद को पकड़ा दिया।

– "हाँ! चँचल जी ऽ...! मेरा हीरो! क्या प्रॉब्लम है?"

– "नहीं सर... वो... अगले हफ़्ते तो चोपड़ा जी का प्रोजेक्ट शुरू हो रहा है।"

– "चोपड़ा जी को टपका दें? प्रोजेक्ट रूक जाएगा! हँ हँ हँ हँ!" समद ने ज़बरदस्त मज़ा लेते हुए कहा।

– "नहीं नहीं सर... समद भाई... कुछ टाईम देओ। इस पिक्चर के बाद की सारी डेट्स देता हूँ।"

– "ओए!" समद को गुस्सा आ गया। उसकी मुस्कुराहट गुम हो गई। टोन बदल गई, "नैक्स्ट वीक मतलब नैक्स्ट वीक! किसी को टपकाना है तो बोलो। मेरा आदमी वो भी कर देगा... समझा न! समद भाई से 'ना' नईं करने का... क्या!?"

– "देखिए..."

– "चुप मादर...! ज़्यादा बात नहीं। नहीं तो पिक्चर गई खड्डे में और तू गया क़बर में... समझा न... नैक्स्ट वीक मंजे नैक्स्ट वीक। बस!" फिर समद ने फ़ोन पत्रा वाला को दे दिया और पत्रा वाला ने चँचल से सैक्रेटरी को प्रोडक्शन ऑफ़िस भेजने की ताक़ीद की– "मैं साइनिंग एमाउंट रखा हूँ, कॉन्ट्रैक्ट भी रखा हूँ।"

फ़ोन जब रखा तो चँचल की हवाइयाँ उड़ी हुई थी।

– "चोपड़ा जी को तू ही मना कर आ... मेरी तो हिम्मत नहीं है।"

– "क्या बोलूँगा? सैक्रेटरी ने पूछा?

– "बोलना इस साले हरामज़ादे गुण्डे का फ़ोन आया था... जान की धमकी दे रहा था... मैं क्या करता!"

चोपड़ा जी के लिए इस तरह का ये पहला वाक़्या था। उनसे कोई सवाल नहीं करता था, डेट्स कैन्सल करना तो ख़ैर किसी की सोच के भी बाहर था। उन्होंने सुना और चुप हो गए। बोलते वैसे भी कम थे। जब सैक्रेटरी चला गया तब उन्होंने आशा देवी को फ़ोन लगाने को कहा।

– "मैं सोच रहा था... ये नया लड़का क्या नाम है इसका... सलिल... हाऊ इज़ ही?"

– "वैरी गुड। एक पिक्चर तो मैं कर ही रही हूँ उसके साथ।"

– "तो दूसरी भी कर लो। मैं सोच रहा था कि चँचल की जगह सलिल को ले लें तो कैसा रहेगा?"

– "आप जैसा कहें। आई वुड से गुड डिसीशन।"

– "तो आप ही उससे कह दो कि आपकी रिकमैन्डेशन पर मैं अगली पिक्चर में चँचल को हटाकर उसे ले रहा हूँ।"

आशा जी ख़ुश हो गई।

– "लेकिन नैक्स्ट वीक से डेट्स देगा मुझे।"

– "मैं बात करके देखती हूँ।"

– "हाँ कर लो फिर बताओ मुझे।"

आशा देवी को एक मौक़ा मिला नये उभरते हीरो पर एहसान करने का। वैसे भी आशा देवी की उम्र अब हो चली थी, कब पिक्चरें फ़्लॉप होने लगें, कब नई नई लड़कियाँ उनकी जगह ले लें और कब वो बेकार हो जाएँ किसको पता। अक़्लमंदी इसी में है कि उस समय से पहले कोई पैसे वाला या नामी आदमी ढूंढ लिया जाए और घर बसा लिया जाए। सनातन युग से नाच गाने के पेशे से जुड़ी औरतें यही करती आई हैं।

आशा जी इस ख़्याल से खुश थीं कि वे सलिल पर एहसान करने जा रही हैं। लेकिन उन्हें यह नहीं मालूम था कि चोपड़ा जी को उनके और सलिल के बीच थोड़ा 'कुछ-कुछ' होने की ख़बरें लग चुकी थीं और वे अपनी मुश्किल घड़ी में सलिल को लेने के लिए आशा देवी का इस्तेमाल कर रहे थे। फ़िल्मी दुनिया का यही दस्तूर है। बन्दूक़ किसी की, निशाना अपना, कंधा किसी और का।

इसी दौरान बहुत दिनों बाद यूसुफ़ ख़ान की एक और पिक्चर रिलीज़ हुई। शादाब प्रोडक्शन्स की 'गहराइयाँ'। पिक्चर बहुत महँगी बनी थी और उससे यूसुफ़ के ढलते कैरियर को सम्भलने की बहुत उम्मीदें थी। गाने अच्छे थे और चल भी रहे थे। इसलिए पिक्चर हिट होने की उम्मीदें भी बढ़ गई थीं। पहले हफ़्ते के टिकट भी बिक चुके थे। लेकिन जब पिक्चर रिलीज़ हुई तो दो दिन में ही उड़ गई। लोगों ने एडवांस में बुक किए हुए टिकट दूसरों को मुफ़्त दे दिये। शादाब प्रोडक्शन्स के मालिक मोहम्मद शादाब अहमद— दफ़्तर में ताले लगाकर कहीं बाहर चले गए। यूसुफ़ को अपने चारों तरफ़ अँधेरा-ही-अँधेरा दिखाई देने लगा। जिस बँगले के सामने कभी गाड़ियाँ-ही-गाड़ियाँ दिखाई देती थीं अब सिर्फ़ कौवों और कबूतरों का जमावड़ा दिखता था। युसूफ़ ख़त्म हो गया था।

आशा देवी का जादू था कि सलिल मान गया।

— "आप के साथ... और वो भी चोपड़ा जी की पिक्चर... ऐनीटाईम!"

चोपड़ा जी से मीटिंग हो गई लेकिन इसमें दीवान साहब का तीन साल वाला कॉन्ट्रैक्ट आड़े आ गया।

दूसरा किसे लिया जाए? सवाल ये था। गाने रिकॉर्ड हुए रखे थे। लोकेशन / स्टूडियो बुक्ड थे। सारे कॉस्ट्यूम्स रेडी थे। इधर चँचल नहीं उधर सलिल नहीं। तीसरा किसे लिया जाए? और लिया भी जाए तो क्या वो इस प्रोजेक्ट के लिए फ़्री बैठा होगा? जो फ़्री बैठा होगा वो बेकार होगा और वह लाख अच्छा एक्टर हो उसे लेकर पिक्चर को क्या फ़ायदा।

चोपड़ा जी ने चँचल खन्ना को फ़ोन किया।

— "बेटे कोई बात नहीं... तू कर ले वो पिक्चर। तेरे ऊपर प्रैशर है... तू महीने भर में ख़ाली होने वाला है... तब शुरू करते हैं।"

चँचल खन्ना ने बहुत भाव विभोर होकर बहुत-बहुत एहसान जताया। क्षमा माँगी और अपने सैक्रेटरी से कहा कि पत्रा वाला की पिक्चर के फ़ौरन बाद डेट्स चोपड़ा साहब को दी जाएँ।

इण्डस्ट्री में भी चोपड़ा जी के नाम के डंके बज गए 'क्या आदमी है यार! हीरा है हीरा! देखो हीरो के लिए पिक्चर पोस्टपोन कर दी...! इसे कहते हैं कमिटेड फ़िल्म मेकर ... जो बनाना है वही बनाना है।'

पिक्चर पोस्टपोन होने की ख़बर छपी तो तीन— अब चार— फ़िल्म पुरानी हीरोइन मीना जी ने भी पढ़ी। उसकी तारीफ़ तो थी, उसकी पिक्चरें चली तो थीं लेकिन तब भी ... अभी तक उसका कैरियर कुछ ख़ास उठा नहीं था। राजनीतिक क्षेत्र के उसके संबंध भी इसमें उसकी कोई ख़ास मदद नहीं कर पाये थे। और उसके यही राजनीतिक संबंध थे जिनके कारण फ़िल्म वाले उसको रोल देते कतराते थे। अगर फ़िल्म के बीच में कुछ पंगा हुआ तो पता नहीं मीना दिल्ली में किससे कहकर क्या गुल खिलाए। अगर वह एक फ़िल्म सैंसर से निकलवा सकती है तो कोई फ़िल्म सैंसर से रूकवा भी सकती है। और सैंसर क्या सरकार तो किसी भी वक़्त किसी भी बारे में कुछ भी कर सकती है।

मीना के सैक्रेटरी ने बहुत कोशिश की कि चोपड़ा जी, आशा देवी की जगह फ़िल्म में मीना को ले लें। मीना पैसे में, डेट्स में सब प्रकार से कम्प्रोमाइज़ करने को तैयार थी। चोपड़ा साहब ने कहा कि वे आशा को कमिट कर चुके हैं और अपने वादे से वो मुकर नहीं सकते। उनका भी अपना ज़मीर है।

— "साला!" मीना ने अपने सैक्रेटरी से बात करते हुए कहा, "सुनंदा को बर्बाद कर दिया, उसका सारा पैसा उड़ा ले गया तब नहीं उसका ज़मीर जागा। मेरे वक़्त ही उसका वादा और ज़मीर जाग गया।"

— "तुसी एक वारी मिल लेयो... पर्सनली!" सैक्रेटरी ने सलाह दी।

मीना इशारा समझ गई। उसने अपने मन में ये भी सोच लिया कि उस दिन वो क्या कपड़े पहनेगी, कौन-सा परफ़्यूम लगाएगी और किन-किन तरहों से चोपड़ा को खुश करेगी। लेकिन चोपड़ा इतनी आसानी से फँसने वाली मछली नहीं था। उसने मीना के किसी भी फ़ोन का जवाब नहीं दिया। फिर मीना के फ़ोन भी आना बंद हो गए और चोपड़ा पटकथा में सलिल की जगह फिर से वापस चँचल के मैनरिज़्मस के हिसाब से तब्दीलियाँ करने में लग गया।

इस सबके दो हफ़्तों बाद आशा देवी की एक पिक्चर रिलीज़ हुई और बैठ गई। अख़बार वालों ने लिखा 'अब आशा देवी की उम्र हो गई है। नाच के ठुमके लगाने की बजाए बेहतर है वे धीरे-धीरे माँ के रोल में आया करें। उनकी कमर थुलथुलाने लगी है और बाज़ू भरने लगे हैं।'

पिक्चर के बैठने और अख़बारों में इस तरह के लेखों से आशा देवी बहुत चिंतित हो गईं। उन्होंने दिन में कई-कई बार अपने घर में लगे आदमक़द शीशे में अपना अक्स देखना शुरू कर दिया। उन्हें अपनी हालत देखकर रोना भी आता था। लेकिन उम्मीद थी कि यही आख़िरी पिक्चर थोड़े ही है। अभी तो कम-से-कम तीन रिलीज़ और बाक़ी हैं। उसके बाद ये दीवान जी की पिक्चर। इन चारों में से अगर एक भी हिट हो गई तो आशा देवी फिर से आशा देवी हो जाएँगी। अख़बार वाले उन्हें फिर से 'ए-क्लास' हीरोइन क़रार देंगे।

लेकिन उनके दिमाग़ में कभी-कभी ये भी आता था कि फ़र्ज़ करो ऐसा न हुआ और पिक्चरें हिट न हुईं! तो!? इसलिए आशादेवी ने अपने से उम्र में छोटे और उभरते हुए कामयाब हीरो सलिल से रिश्ते और पुख़्ता करने शुरू कर दिये। ये लड़का अगर इनके इश्क में पड़ गया और कहीं आशा देवी से सलिल ने शादी कर ली तो आशा देवी का कल्याण हो जाएगा। दीवान जी की शूटिंग पर तो लगातार मुलाक़ात होती ही थी। उसके बाहर भी– कभी उसके घर, कभी अपने घर। मुलाक़ातों का सिलसिला बढ़ने लगा। बाहर ज़्यादा कहीं जा नहीं सकते थे– लोग देख लेंगे। इसलिये या तो बाहर नहीं जाते थे या फिर जाते थे तो केवल पाँच सितारा होटलों में– वो भी रात बारह के बाद। ऐसे में अक्सर सलिल ड्राइवर को घर भेज देता था और आशा को लेकर ख़ुद ड्राइव करता था। रात के सन्नाटे में। गाड़ी के अन्दर के अँधेरों में और मख़मली सीटों पर क़ुर्बत का मज़ा दोबारा हो जाता था।

– "तुम्हारे सीने के घने-घने बाल मुझे बेहद पसंद हैं। इनमें उँगलियाँ घुमाती हूँ तो लगता है आसमान में तारों के बीच चल रही हूँ।"

– "और तुम्हारी लटों से तुम्हारे चेहरे तक आहिस्ता-आहिस्ता हाथ ले जाते में मुझे लगता है कि जैसे बादलों के पार मैं चाँद को छू रहा हूँ।"

– "धत!"

– "क्यों?... मैं इन्सान नहीं हूँ? तुम्हें लग सकता है तो मुझे भी तो लग सकता है।"

और इस तरह की बातों पर आशा देवी अक्सर सलिल के होठों पर अपने होंठ रखकर उसकी बोलती बन्द कर देती थीं।

आशा देवी लड़की थीं, होशियार थीं, मौक़ा ढूढ रही थीं। सलिल लड़का था, इमोशनल था, प्यार में डूबता जा रहा था। उसका ज़ौम ये भी था कि 'इतनी बड़ी हीरोइन मुझ जैसे नये लड़के के इश्क़ में पड़ गई है... मुझ में ज़रूर कुछ होगा!"

आशा देवी की माँ सब जानकर भी अनजान बनी थीं। फ़िल्मी हीरोइन की माँ! पहले हीरोइन बनने के लिए भी तो उन्होंने ही प्रेरित किया था। तब क्या वे ये नहीं जानती थीं कि रास्ता क्या है? सब जानती थीं। जब तक लड़की रुपया घर लाती रहे तब तक 'छोटी-मोटी' बातें नज़रअंदाज कर देनी चाहिए।

दीवान जी की पिक्चर लगभग पूरी हो गई। डबिंग आख़िरी स्टेजेस पर थी। बैकग्राउंड म्यूज़िक के लिए स्टूडियो बुक हो चुका था और डिस्ट्रीब्यूटर्स से रिलीज डेट की बात चल रही थी। ईद और दीवाली बहुत अच्छे समय होते हैं किसी भी फ़िल्म की रिलीज़ के लिए। तब फ़िल्म के हिट होने के चांसेज़ ज़्यादा होते हैं। इस बार ईद और दीवाली बिल्कुल आसपास पड़ रही थीं और किसी बड़े स्टार या प्रोड्यूसर की पिक्चर का रिलीज़ तय नहीं था। दीवान की पिछली पिक्चर सुपर हिट हो गई थी। इस पिक्चर की रिपोर्ट भी बहुत अच्छी थी। गाने हिट हो गए थे। दीवान डिस्ट्रीब्यूटरों से जितना ज़्यादा पैसा ले सकता था उस जोड़ तोड़ में था। सलिल 'हॉट' स्टार हो चुका था। आशा देवी, जो कभी पहले नंबर पर आती थीं, उनकी हैसियत अब दूसरे नंबर की हो गई थी। सलिल सातवें आसमान पर था। आशा देवी 'इनसिक्यूरिटी' की हदों पर। और इनसिक्यूरिटी क्या नहीं करवाती।

– "तुम तो अब बड़े स्टार बन गए हो।" एक दिन आशा ने सलिल की नंगी जाँघों पर हौले-हौले हाथ फिराते हुए कहा।

– "इसमें तुम्हारा भी तो हाथ है।"

– "तो हाथ थाम भी लो... कब तक यों ही चलता रहेगा। प्रेस से छुपकर, लोगों से छुपकर..."

– "प्रेस को सब पता है यार... छापते तो रहते हैं हमारे क़िस्से... जाने साले कहाँ-कहाँ पहुँच जाते हैं, कहाँ-कहाँ देख लेते हैं हमें।"

– "तो?"

– "तो क्या?"

– "हमें शादी नहीं कर लेनी चाहिए?" आशा देवी ने अदा से निगाहें उठाकर सलिल की तरफ़ देखा।

सलिल उठ कर बैठ गया। उसने सिगरेट निकाल कर सुलगाई, कश छोड़ा, आहिस्ता से आशा को अपनी तरफ़ खींच कर बग़ल में दबा लिया और कहा– "अभी चलें!?"

– "कहाँ?" आशा ने ताज्जुब से पूछा।

– "मंदिर में!"

और दोनों हँस पड़े। लेकिन आशा देवी सीरियस थीं। सीरियस थीं क्योंकि उनकी तो ज़िन्दगी का, उनके सरवाइवल का सवाल था। उन्होंने घर जाकर सीधे माँ से कहा, "अब शादी कर लेनी चाहिए और सलिल मान गया है।"

– "क्या... शादी? ...तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो गया है!"

– "क्यों? सभी लड़कियाँ करती है... तुमने भी तो की थी।"

– "अरे वो ही तो एक कमबख़्त ग़ल्ती की थी मैंने... कम-से-कम तुम तो वो मत करो।"

– "वो ग़ल्ती न करतीं तो मैं नहीं होती... मैं नहीं होती तो तुम्हारे ये जो साज-सिंगार हैं न... ये गाड़ी में घूमना, ये फ़ाइव स्टार में ठहरना, ये सोने से लदे रहना, ये बड़े-बड़े लोगों में उठना-बैठना– ये सब कुछ नहीं होता। तुम वहीं कोलीवाड़ा के मुर्ग़ीख़ाने की टूटी बिल्डिंग वाले फ़्लैट में रह रहीं होती।"

– "मत भूलो कि तुम्हें स्टार मैंने बनाया है।"

– "माई फुट! मुझसे रंडी-बाज़ी करवाई है तुमने। और उसका भरपूर फ़ायदा उठाया है तुमने।"

– "कभी सोचा है कि तू शादी कर लेगी तो मेरा क्या होगा! मैं बूढ़ी हो गई हूँ ... मैं कहाँ जाऊँगी... कैसे रहूँगी?"

– "तुम बूढ़ी हो गई हो और मुझे भी बूढ़ी किये दे रही हो। कभी सोचा है कि मेरा क्या होगा? तुम्हें मेरे बारे में सोचने की फ़ुर्सत ही नहीं है। तुम्हें तो बस पैसा चाहिए-- पैसा!"

माँ रोने लगी। "हाय राम... ये कैसी बातें करने लगी है तू... ये सब उस सलिल ने सिखाया होगा... पहले तूने कभी मुझसे इस तरह बात नहीं की।"

— "यही तो ग़ल्ती हो गई । तुमसे तो मुझे इस तरह उस पहले दिन ही बात करनी चाहिए थी जब तुमने मुझे पहले प्रोड्यूसर के ऑफ़िस भेजा था। वो अन्दर मेरे जिस्म से खेल खेलता रहा और तुम बाहर सीढ़ियों पर बैठी मेरे बाहर निकलने का इन्तज़ार करती रहीं। छिः...! तुमने मुझे रंडी बना दिया। कितनी नीच हो तुम। तुम्हारी जैसी माँओं को बच्ची पैदा करते ही मर जाना चाहिए।"

बहुत लड़ाई-झगड़ा हुआ। बर्तन और फूलदान फेंके-तोड़े गए। लेकिन सलिल के नाम पर माँ राजी न हुई।

— "तू सलिल-सलिल करती है... मेरी मान रूक जा... देख ले ये पिक्चर हिट होती है या नहीं। अगर ये हिट हो गई तो कुछ सालों तक उसका स्टारडम पक्का और अगर ये फ़िल्म पिट गई तो सलिल का डिब्बा। मेरी मान... रिलीज़ तक रूक जा।" बात में दम था। बात आशा देवी की समझ में बैठ गई। वैसे भी रिलीज़ में बचा ही क्या था। मुश्किल से महीना-डेढ़ महीना!

13

— "ऐ भैया!..."

— "क्याबे? भैया किसे बोलता है? मैं भैया दिखता तुझको? साला!"

— "अरे... ऐसे कैसे बोल रहे हैं आप... हम भैया कह रहे हैं और आप हमें गाली दिये जा रहे हैं।"

— "साल्ला... फिर भैया बोला।"

उस आदमी ने होंठ भींच लिए थे और श्यामा प्रसाद का बस गिरेबान पकड़ने ही वाला था कि रेलवे का एक कर्मचारी जो वहाँ से गुजर रहा था— बीच में आ गया, "क्या हुआ? क्यों लड़ रहे हो?"

— "साल्ला... भैया-भैया कर रहा है जब से।"

श्यामा प्रसाद— फ़िल्म स्टार सलिल के बाप— ललितपुर से चलकर पँजाब मेल से सुबह-सुबह बम्बई के वी.टी. स्टेशन बस पहुँचे ही थे। सो पाए नहीं थे क्योंकि रिज़र्वेशन का चलन नहीं था और सैकेंड क्लास में तब कुशन नहीं लकड़ी की पट्टियाँ होती थीं— जो बैठो तो भी चुभती थीं। श्यामा प्रसाद ललितपुर के आसपास रिश्तेदारी में गए हों तो गए हों वरना इतने बड़े शहरों में तो कभी गए ही नहीं। फिर बंबई! उन्हें क्या पता कि इस शहर में 'भैया' कहना गाली है। भैया याने यू.पी / बिहार वाला, याने बेव़कूफ जिसका मज़ाक़ उड़ाया जा सके। ख़ैर...! भला हो उस रेलवे वाले का, जिसने उनसे ज़रा ठीक तरह बात की और मदद करने का भरोसा दिलाया। दरअसल वी.टी. में उस समय ज़्यादातर झाँसी / ललितपुर वाले ही काम पर थे इसलिए बात आसान हो गई। श्यामा प्रसाद ने एक पर्चा दिखाया— रिलीज़ होने वाली सलिल की पिक्चर का हैण्डबिल था।

— "यहाँ जाना है।"

रेलवे वाले ने हैण्डबिल देखा फिर श्यामा प्रसाद को ऊपर से नीचे तक देखा और ज़रा देखता ही रहा।

— "क्या?" श्यामा से न रहा गया।

— "अब चचा इस उम्र में तुम्हें फ़िल्मों में काम करेका शौक़ चर्राया है... कभी नाटक-वाटक किये हो कि ऐसे ही...।"

— "अरे हमें नहीं करना यार फ़िल्म-विल्म में काम..."

लेकिन रेलवे वाले के मन में तो बैठ गई थी। बोला, "घर से भाग-वाग के तो नहीं आए हो न... रोज़ाना इहाँ पोस्टर लगते रहते हैं... उम्र इतनी चेहरा ऐसा, घर से लापता है...। ऐसा नहीं न... नहीं तो पुलिस आ जाए तो हम भी फँस जाएँ!"

फिर उन्होंने रेलवे वाले को अपनी असलियत बताई। तो पहले तो वो हँसा। फिर जब उसे लगा कि हो सकता है ये बात सच भी हो तो उसने कहा कि वो उनकी मदद करने को तैयार है। लेकिन सवाल अब ये था कि जब तक इस फ़िल्म स्टार का पता-ठिकाना न मिले तब तक श्यामा प्रसाद रहेंगे कहाँ? दो दिन तो उनको रिटायरिंग रूम में ठहराया जा सकता था। एक आध दिन रेलवे वाला और ठेल देता लेकिन उसके बाद...!"

— "दो दिन में भी पता नहीं लगेगा?" श्यामा प्रसाद को अचम्भा हुआ।

— "अरे चचा ये फ़िल्म वाले हैं... ऐसे इनका पता लगने लगे तो इनके घर में लोग भीड़ लगा लें। इनका पता और फ़ोन नंबर आम इन्फ़ॉरमेशन नहीं होता। इनकी डायरेक्टरी ही अलग होती है।

— "तो क्या किया जाए? पता तो भैया लगाना पड़ेगा। इसीलिए तो हम ललितपुर से चले आ रहे हैं।

— "पहली बात तो चचा आप यहाँ ये भैया कहना बंद कर दो। ठीक है! और अब आप हमारी तरफ़ के आदमी हैं तो पता हम पता करेंगे... लेकिन एक शर्त है।"

— "क्या?"

— "पता मिल गया तो आप हमारी बिटिया को सलिल जी से मिलवाओगे।"

— "मिलवा देंगे! लेकिन काहे?"

— "अरे उसे फ़िल्म स्टारों से मिलने का बहुत शौक़ है और सलिल तो बहुत बड़ा स्टार है भाई। उसके नाम की तो दुनिया दीवानी है।"

श्यामा प्रसाद को बहुत ताज्जुब भी हुआ और उनकी समझ में भी कुछ नहीं आया क्योंकि उनकी नज़र में सलिल निहायत नाकारा और आवारा-सा लड़का था और फ़िल्मों के बारे में तो उनके विचार कुछ अच्छे थे ही नहीं।

— "चलो पहले पता तो लगे!" बस इतना बोल के चुप रह गए।

रेलवे वाले ने अपने मित्र से पूछा। मित्र ने अंधेरी स्टेशन के एक टी.टी से पूछा। उस टी.टी ने अपने एक जान-पहचान वाले लड़के से जो कि फ़िल्मों में 'स्ट्रगलर' था, एक्स्ट्रा का रोल करता था उससे पूछा। उसने कहा वो 'ट्रेड-गाइड' (फ़िल्म इण्डस्ट्री की पत्रिका) से पता करेगा। इस सबमें दूसरे दिन की दोपहर हो गई। शाम और रात बची थी। सुबह आठ बजे के आस-पास रिटायरिंग रूम ख़ाली करना पड़ेगा। फिर तो सर छिपाने की भी जगह नहीं बचेगी। इतनी बड़ी बंबई में जाएँगे कहाँ। शाम को एक पत्रकार आया अपना टिकट करवाने— पी.आर.ओ. के पास— स्पेशल कोटा में। रेलवे कर्मचारी उसे जानता था। उसने पत्रकार से सलिल का पता पूछा। उसने ऑफ़िस पहुँचकर फ़ोन करने का वादा किया। शाम के पाँच बजे के आसपास जब पता मिला तो यह तय हुआ कि अभी

ही चला जाए ताकि अगर सलिल न मिला तो कम-से-कम लौटकर रिटायरिंग रूम में तो आकर ही सो सकेंगे।

— "और मिल गया तो सामान लेने फिर आयेंगे?" श्यामा ने पूछा।

— "तो सामान ले लो... लेकिन कमरा छोड़ने तो आना ही पड़ेगा... या फिर कमरा अभी ही छोड़ दो।"

— "अरे नहीं नहीं... पता मिल जाए फिर छोड़ेंगे कमरा। चलो ऐसे ही चलते हैं।"

दोनों चले। वी.टी. से अँधेरी की लोकल जाती थी— उसमें बैठ लिये। शाम का समय था, सप्ताह में काम-काज का दिन था ट्रेन में भीड़ बहुत थी। इतनी भीड़ और इतने सटे-सटे खड़े रहने की आदत श्यामा की थी नहीं। लेकिन करते क्या!?

अँधेरी स्टेशन पहुँचे तो वहाँ पूरब-पश्चिम था। पूरब की तरफ़ जाना है कि पश्चिम की तरफ़— पूछ कर यह पता लगाया गया। फिर पश्चिम की तरफ़ बाहर जाकर टैक्सी ली गई। टैक्सी वाले को पता समझाया गया। एक बिल्डिंग थी— पुरानी-सी— अँबोली में, फ़िल्मालय स्टूडियो के पास। उसकी तीसरी मंजिल पर सलिल का नया ठिकाना था।

जब दोनों पहुँचे तो शाम के सात बज चुके थे। अँधेरा हो चुका था। तीसरी मंजिल की सीढ़ियाँ चढ़कर जब इन लोगों ने फ़्लैट की घंटी बजाई तो कोई जवाब नहीं मिला। फिर घंटी बजाई। तब काफ़ी देर बाद एक नौकर ने दरवाज़ा आधा खोला, "क्या है?"

— "सलिल साहब यहीं रहते है?"

— "काम बोलो?"

— "यहीं रहते हैं न!?"

— "साब घर पर नहीं हैं।"

— "कब तक आएँगे?"

— "मालूम नहीं!"

— "कोई तो अंदाजा होगा?"

— "रात देर से भी आ सकता है... कल भी आ सकता है।"

— "ये उनके पिता जी हैं... ये यहीं रहेंगे।"

— "ये!?" लड़के ने श्यामा को ऊपर से नीचे तक ध्यान से देखा, "ये उनके पिता जी हैं!"

— "हाँ... ये यहीं रहेंगे..."

— "देखिये इहाँ जो भी आता है वो उनका भाई, दोस्त, घर वाला ये ई सब बनके आता है... आप पिता जी बनके आ गया! मैं किसी को ऐसे ठहरा नहीं सकता... आप बाद में आओ।"

— "अरे... लेकिन ये कहाँ जाएँगे? ...अच्छा साब को फ़ोन कर दो।"

— "वो तुम करो... नहीं तो बाद में आओ।"

— "अच्छा तो वेट तो करने दो।"

— "तो करो!"

– "अंदर तो आने दो..."

– "नीचे बैठो... जब साब आएगा तब मिलो।"

– "नीचे? क्या सड़क पे?"

– "कम्पाउंड में बैठो।" और नौकर ने दरवाज़ा बंद कर दिया।

– "कैसे लोग हैं! अंदर भी नहीं आने देते। दरवाज़ा आधा खोलते हैं और चेन लगाकर बातें करते हैं।"

रेलवे वाले ने सलाम किया और जाने का तय किया। फिर सोचा कि है तो ये असली फ़िल्म स्टार और ये बूढ़ा कहता है कि ये उसका बाप है। तो इससे अच्छा परिचय हो ही नहीं सकता। फिर एक बार मुलाक़ात हो जाए तो स्टार से ताल्लुक़ात बन जाएँगे। यह सोचकर रूक गया– बिल्डिंग के नीचे कम्पाउंड में अंदर। वहाँ भी वाचमैन ने तमाम सवाल पूछे, वह तो वहाँ से उन्हें भगाने लगा लेकिन श्यामा प्रसाद ने कहा कि वो सलिल के पिता हैं तब वह कुछ नरम पड़ा। वाचमैन भी परतापगढ़ का था। यू.पी. वाले ने अपनी तरफ़ के आदमी का थोड़ा लिहाज़ कर लिया। बैठने के लिए कुर्सी एक थी– वह भी वाचमैन की। और बैठने के लिए कोई जगह नहीं थी। बाउँडरी वाल भी ऊँची थी नहीं तो उसी पे टेका लगा लेते। कुछ देर तो दोनों ठहरे फिर आसपास जाकर टहल आए। रात और गहरा गई। आठ बजे, साढ़े आठ बजे, नौ बजे...! वक़्त कटता ही न था। दस बजे के आसपास एक काली गाड़ी कम्पाउंड के अंदर दाख़िल हुई। पीछे की सीट से सफ़ेद क़मीस, सफ़ेद पैंट और सफ़ेद जूता पहने एक आदमी उतरा जो श्यामा को क़द-काठी से सलिल-सा लगा। उन्होंने आवाज़ दी– 'सलिल!'

आदमी ने मुड़कर भी नहीं देखा। वो सीधे लिफ़्ट की तरफ़ जाने लगा। फिर रेलवे वाले ने आवाज़ दी– 'सलिल जी!' सलिल ही था। उसने मुड़कर आवाज़ की तरफ़ देखा। रेल्वे वाला लपका। श्यामा धीरे-धीरे बढ़े।

– "सर आपके पिता जी आए हैं।"

– "व्हाट?!" सलिल ने हिक़ारत से रेलवे वाले की तरफ़ देखते हुए कहा।

इतने में श्यामा प्रसाद पास पहुँच गए। सलिल ताज्जुब में पड़ गया। वो श्यामा के पैर छूने रस्मन झुका। आख़िर इतना बड़ा फ़िल्म स्टार पब्लिक में किसी के पैर कैसे छुए। काम देने वालों के रोज़ छूएँ तो चलता है।

पिता जी ने ग़ौर से लड़के को देखा। खुला-खुला गला, गले में सोने की चेन, हाथ में बेशक़ीमती घड़ी, पाँवों में चमचमाते हुए जूते, चेहरे पर निखर आया रंग...! उन्हें खुशी भी हुई और यहाँ इस तरह मिलना अजीब-भी लगा। तब तक लिफ़्ट आ गई।

– "आप?" सलिल ने पूछा।

तीन मंज़िल तक पिता जी ने बताया कि यही हैं जिन्होंने उन्हें बम्बई में सहारा दिया, ठहरने की व्यवस्था की, यहाँ तक लाए।

– "सर एक रिक्वेस्ट है आप से।" रेलवे वाले ने कहा।

– "कहिए?" सलिल ने नौकर को चाय बनाने के लिए कहकर पूछा।

– "मेरी बेटी को आपसे मिलने और शूटिंग देखने का बहुत शौक़ है।"

– "कभी भी ले आइये। आप मेरे पिता जी के साथ आए हैं आपको कुछ भी पूछने की ज़रूरत नहीं है। आजकल मेहबूब में स्टेज 3 पर शूटिंग चल रही है। कल ही आ जाइये।"

रेलवे वाले ने चाय पी, शुक्रिया अदा किया और चलने को हुआ तो श्यामा ने कहा, "जाना तो हमें भी पड़ेगा।"

– "क्यों?" सलिल ने पूछा।

– "क्योंकि... रिटायरिंग रूम में सामान पड़ा है वो लाना है।"

– "नहीं, वो ठीक है" सलिल ने फिर नौकर से ड्राइवर को बुलाने को कहा, "देखो हैदर को बुलाओ। अभी चाबी देकर नहीं गया है इसलिए नीचे ही होगा।" फिर उसने रेलवे वाले से कहा, "भाई साहब... आप मेरी गाड़ी ले जाइये... ड्राइवर आपको आपके घर छोड़ देगा। बाबू जी का सामान गाड़ी में डलवा दीजिएगा। ड्राइवर यहाँ ले आएगा।"

रेलवे वाले बाबू को इससे ज़्यादा और क्या इज़्ज़त दी जा सकती थी कि स्टार अपनी गाड़ी में खुद छुड़वाए। और बाबू जी को इससे ज़्यादा आराम और क्या मिल सकता था कि दोबारा उन्हें धक्के खाते हुए वी.टी. न जाना पड़े।

– "रिटायरिंग रूम में साइन करना पड़ेगा..."

– "अरे कर लेना यार...!" सलिल ने रेलवे वाले के कन्धे पर हाथ रखकर प्यार से कहा। कर्मचारी खुश हो गया।

रात के क़रीब ग्यारह के आसपास जब पिता जी हाथ-मुँह धो कर बैठे तो उन्होंने शिकवा-शिकायतें शुरू कीं। तुम बग़ैर कहे चले आए, यहाँ आकर कोई ख़बर नहीं की, यहाँ फ़िल्मों में क्या झख मार रहे हो वग़ैरह-वग़ैरह...। सलिल ने आधा सुना आधा नहीं। फिर बात काटकर बोला, "अच्छा... ये बताइये खाना क्या मँगवाया जाए। क्योंकि मुझे कल सुबह छः बजे चले जाना है और इन सब बेकार की बातों का न मेरे पास वक़्त है न मूड है।"

– "मँगाया जाए मतलब? बनेगा नहीं?"

– "यहाँ कहाँ बनेगा... बोलिये जल्दी बोलिये वरना ग्यारह बजा है बस होटल बन्द ही होने वाले होंगे।"

कुछ देर बाक़ी बातों पर चर्चा हुई। ललितपुर में वो स्टार बन चुका है ये सुन कर सलिल का सीना फूल गया। अचानक उसे ललितपुर से प्यार महसूस होने लगा। फिर उसने बताया कि ये फ़्लैट उसका अभी है। इस पिक्चर के बाद वो एक बँगला ख़रीदने वाला है। जो कि उसने देख तो रखा है लेकिन अभी तक लिया नहीं है।

दूसरे दिन सुबह छः बजे तैयार होकर सलिल तो चला गया। पिता जी और नौकर घर में अकेले रह गए। पिता जी ने नौकर के ज़रिये सब हाल जानना शुरू किया। आशा देवी के क़िस्से भी नौकर ने बता दिये। पिता जी ने कभी ऐसी ज़िन्दगी न देखी न सुनी

इसलिए उन्हें ये अजीब लगा लेकिन इस बारें में किसी जवान लड़के से बात करना भी ठीक नहीं लगा।

सलिल रोज़ सुबह छः बजे निकल जाता। रात को कभी दस, कभी ग्यारह-बारह बजे लौटता। नौकर को ताक़ीद कर देता कि वह बाबू जी के लिए खाना बना दे, खिला दे और उनका ख़्याल रखे। बाबू जी बोर हो गए! अन्दर चार दीवारी में और वो भी बंबई के फ़्लैट में। आदमी कितने दिन अकेले दीवारें देखते बैठ सकता है। सुबह उठते, नहाते-धोते, पूजा-पाठ करते, गीता-रामायण लाए थे वो पढ़ लेते। अख़बार यहाँ अंग्रेजी का आता था, थोड़ा बहुत वह भी पढ़ लेते थे। बस! फिर क्या!? रेडियो लगा लेते– कभी गाने, कभी ख़बरें। टी.वी. काला-सफ़ेद था वो भी शाम को देख लेते थे। एक दिन उन्होंने नीचे जाकर घूम आने का प्लान बनाया लेकिन लौट कर आए तो आइंदा यहाँ घूमने से तौबा कर ली। 'कितनी भीड़ है भैया... कोई ढक्का दे दे तो चलती गाड़ी के नीचे ही आ जाएँ!' फिर उन्होंने सलिल से पूछा– "सुनते हैं तुम्हारा बड़ा नाम हो गया है। तमाम तस्वीरें छप रही हैं। तुम करते क्या हो? नाचते हो... गाते हो... करते क्या हो?"

पहली बात सलिल को अच्छी लगी लेकिन नाच-गाने वाली बात से उसकी त्यौरियाँ चढ़ गई। लेकिन बाप था कुछ तो लिहाज़ करना पड़ेगा इसलिए उसने कहा, "जब दुनिया इतनी दीवानी है मेरी तो कुछ तो अच्छा करता ही होऊँगा।" पिता जी चुप हो गए। फिर उन्होंने इच्छा ज़ाहिर की कि अब सलिल भी घर चले और माँ से, बहन से मिले। जिस पर सलिल ने अपने काम में व्यस्त होने के कारण मजबूरी जता दी।

– "तो अब हम जाएँगे... यहाँ क्या करेंगे।"

– "ठीक है... टिकट करवा दूँगा। कब जाना है?"

– "हमें क्या हम कल ही चले जाएँगे... लेकिन एक बार हमारा जी था कि तुम्हारा दफ़्तर भी देख लेते। वहाँ लोग पूछेंगे तो हम क्या बताएँगे।"

– "दफ़्तर नहीं... स्टूडियो है।"

– "हाँ...वही।"

– "कल सुबह नाश्ता-वाश्ता करके आराम से आ जाइयेगा। मैं गाड़ी भेज दूँगा।" श्यामा प्रसाद कल का सपना देखने लगे।"

– "और परसों चले जाएँगे वापस।"

– "कल उस रेलवे वाले को भी आना है। आप दोनों एक साथ रहेंगे तो बोर नहीं होंगे। परसों का टिकट बुक करवा देता हूँ सैक्रेटरी को बोल के।

दूसरे दिन सलिल ने जाने के बाद नौ बजे के आसपास गाड़ी घर भेज दी। पिता जी तैयार थे। गाड़ी में पहली बार बैठे तो उन्हें न दरवाज़ा बन्द करना आया, न उतरने के लिए दरवाज़ा खोलना। पर बैठे तो जैसे मिज़ाज में शान बैठ गई। सीना तन गया, गर्दन ऊँची हो गई। 'मेरे लड़के के पास मोटर गाड़ी है' यह ख़्याल गुज़रना शुरू हो गया। स्टूडियो पहुँचे तो वहाँ रेलवे कर्मचारी अपनी बेटी को लेकर पहले ही मौजूद था। वो और उसकी बेटी– जो क़रीब चौदह-पंद्रह साल की थी– और हाई स्कूल में पढ़ती थी– दोनों

चाय-नाश्ता कर चुके थे। सलिल एक शॉट के लिए मेकअप करवा रहा था। आसपास पाँच-छः लोग दरबार लगाए थे। एक असिस्टेंट सीन के डायलॉग याद करवा रहा था। इतने में पिता जी पहुँचे और सीधे सलिल के पास पहुँच कर बेतक्लुफ़ी से बैठ गए। आसपास के लोगों ने इन्हें उचटी निगाह से देखा। श्यामा किसी की परवाह किये बग़ैर बोले, "बड़ी गर्मी है यहाँ तो!" और उन्होंने अपने कुर्ते के पल्ले से पँखा करना शुरू कर दिया। इस तरह का लिबास, यह आचरण सलिल के लिए ज़रा 'अन ईज़ी' हो गया। उसने फ़ौरन एक स्पॉट ब्वॉय को बुलाकर कहा– "अरे सुन... इनको वहाँ ले जाकर चाय-वाय पिला, नाश्ता करा।"

पिता जी देखते रह गए। ब्वॉय उनको लेकर दूसरी जगह ले गया जहाँ रेलवे कर्मचारी और उसकी बेटी पहले ही बैठे थे। दोनों की दुआ सलाम हुई। लेकिन श्यामा को यह बात अच्छी नहीं लगी कि उनके बेटे ने उनको 'एकनॉलेज' भी नहीं किया। किसी से मिलवाया भी नहीं और सीधे बात भी नहीं की। वो कोई नाश्ता करने थोड़े ही आए थे। बहरहाल! उन्होंने संतोष किया कि आख़िर लड़का काम पर है और काम में दिमाग़ लगा हो तो फिर आव भगत में ध्यान नहीं रहता।

शूटिंग शुरू हुई। सीन शुरू होता, बार-बार लाइटिंग चैक की जाती। एक्टर्स बार-बार डायलॉग बोलते और बार-बार भूल जाते। एक शॉट के कई-कई टेक होते। रेलवे वाला और श्यामा दोनों बड़ी जल्दी बोर हो गए। हाँ! लड़की अलबत्ता कहती रही 'ज़रा देर और...!' फिर दोपहर का खाना आया। खाने में कई चीजें थीं और खाना था भी बहुत। खाने के बाद श्यामा ने ड्राइवर से कहा– "घर छोड़ दे भाई मुझे तो।"

फिर उन्होंने रेलवे वाले को साथ लिया और ड्राइवर से ताक़ीद की कि उन लोगों को भी वो उनके घर छोड़ दे। हालाँकि ड्राइवर ने इसके लिए सलिल की परमीशन ली लेकिन यह श्यामा को कहाँ मालूम पड़ेगा। ये लोग वापस आ गए। शूटिंग चलती रही। शाम को श्यामा के टिकट आ गए दूसरे दिन की पँजाब मेल के।

– "फ़र्स्ट क्लास?"

– "तो आप क्या समझे?... मैं स्टार हूँ कोई मामूली आदमी तो नहीं हूँ।"

– "लेकिन ये तो बहुत मँहगा है भाई।"

– "चलिये जो भी है..." सलिल ने श्यामा के हाथ में पाँच हज़ार रुपये के नोट रख दिये, "ये पाँच हज़ार हैं। काम आएँगे।"

– "पाँच हज़ार!!"

सामान बाँध लीजिये। कल आपको ड्राइवर स्टेशन छोड़ देगा। ठीक है!

14

पत्रा वाला की फ़िल्म धड़ाधड़ पूरी हो रही थी। चँचल ने जो भी डेट्स दी थीं वो पूरी शूटिंग में लगीं। पहले जो हीरोइन थी उसे बदला गया था क्योंकि समद भाई की गर्ल फ्रेंड– रेहाना– को हीरोइन बनने का शौक़ था।

– ''तू... तू साली एक्टिंग करेंगी! ...हँ हँ हँ हँ! भेजा उड़ जायेंगा पब्लिक का।''

– ''क्यों, मैं एक्टिंग नहीं कर सकती? ...नहीं कर सकती?''

और अदा से 'नहीं कर सकती?' पूछते-पूछते उसने समद भाई को जो सोफ़े पर लिटाया और उसकी जाँघों और जाँघों के ऊपर जो मालिश शुरू की तो समद भाई की साँसे गर्म हो गईं।

– ''नहीं कर सकती... ऐं...!''

फिर रेहाना ने जो करतब किये उससे समद भाई का निर्वाण हो गया। आत्मा-परमात्मा में लीन हो गई। आनंद झरने की तरह बहने लगा। उसकी ऐसी समाधि लगी कि– बस!

तो रेहाना को तो हीरोइन बनना ही था। पत्रावाला ने एक आध बार दबी ज़बान से कहा भी 'भाई! रेहाना का एक्टिंग में कोई तजुर्वा तो है नहीं।'

– ''काए का तर्जुवा बे... तू काए के लिए है? ऐं! तू फ़िल्म वाला है न... डायरेक्टर है न... तुझे काए को लिया मैंने... तू एक्टिंग करा... डायरेक्शन कर! हँ हँ हँ हँ...!''

पत्रा वाला ने किसी तरह सर हिला दिया। मना वो कर नहीं सकता था क्योंकि पैसा तो समद भाई का था। और अगर मना करता भी तो गोली खाता। इसलिये ख़ैरियत इसी में थी कि हीरोइन रेहाना ही हो।

– ''रेहाना!?'' ...ये कौन है? चँचल ने पूछा।

– ''भाई ने रिकमैंड कियेला है।''

– ''अरे लेकिन मैं स्टार हूँ यार... मेरे साथ कोई मेरे टक्कर वाली हीरोइन होनी चाहिए। ...ये क्या कि भाई ने कहा और कोई भी ऐरी-ग़ैरी पकड़ लाए।''

– ''ऐ... धीरे...!''

– ''क्यों? ग़लत बोल रहा हूँ मैं?''

– ''भाई ने सुन लिया न तो... समझ लो तुम।''

– क्यों... रेहाना उनका माल है क्या?''

– ''हाँ! एकदम ख़ास।''

– ''ओह! ...इसलिए।''

– ''वो तो ये भी बोले कि पत्रा वाला तेरे हाथ में रेहाना सेफ़ है इसलिए तुझे डायरेक्टर लियेला है।''

– ''हँ हँ हँ हँ...!'' चँचल हँसा, ''तब तो बाबू मैं रेहाना की ले के रहूँगा... देखूँ साली चीज़ क्या है!''

– ''कोशिश भी मत करना... भाई का घोड़ा देखा है... दब जाएँगा।''

– ''ये बात-बात पे साला गोली मार देगा क्या!''

स्क्रिप्ट जब फ़ाइनल की गई तब इस बात का ख़ास ख़्याल रखा गया था कि लड़की नई है, ना तजुर्बेकार है इसलिए उसके सीन कम होंगे। एक गाना उसका सोलो होगा, एक हीरो के साथ– बस। लेकिन पिक्चर में पाँच गाने तो ज़रूरी थे, नहीं तो रिकॉर्ड कैसे बनता। इसलिए दो गाने बैकग्राउंड में रखे गए और हीरो को एक गाना सोलो दिया गया।

पिक्चर की शुरुआत गानों की रिकॉर्डिंग से हुई। फिर फ़ौरन शूटिंग शुरू हो गई और शूटिंग बहुत अच्छी तरह और सपाटे से होने लगी।

पिक्चर की रिलीज़ में बस क़रीब महीना भर बाक़ी था। गाने रिलीज़ किये गए। जश्न मनाया गया। जिस कम्पनी को गाने बेचे गए थे वह मार्केट में कुछ ही सालों से आई थी और ज़रा से ही वक़्त में उसने मार्केट में अपनी जगह बना ली थी। कम्पनी का नाम था 'सरगम' और इसके मालिक का नाम था अमरिन्दर। अमरिन्दर ऊँचे दामों में फ़िल्म का म्यूज़िक ख़रीदता था और सबसे ज़्यादा बेचता था। कैसेट मार्केट में आ चुके थे और इसलिए लोगों को रिकॉर्ड के बजाए ये छोटे टेपरिकॉर्डर में या अपनी गाड़ियों, बसों में सुनना ज़्यादा सुविधाजनक लगता था। इसलिए कैसेट बिकता भी ज़्यादा था और सरगम की मार्केटिंग भी ग़ज़ब की थी। देश के छोटे-छोटे हिस्सों तक में इसका नेटवर्क था।

मामला था तो सीधा। म्यूजिक दो, पैसा लो। लेकिन मसला ये पड़ गया कि पत्रा वाला के म्यूज़िक डायरेक्टर– करीम भाई का अमरिन्दर से पुराना झगड़ा था। कभी हो चुका था। पहले न इसका करीम भाई ने ज़िक्र किया न किसी को पता ही था। वैसे भी ये किसी को पहले से क्या पता था कि 'म्यूज़िक' 'सरगम' को ही बेचा जाएगा।

तो बहरहाल अमरिन्दर ने पत्रा वाला से तो डील कर लिया, उनको तयशुदा पैसे भी दे दिये लेकिन करीम भाई की दुश्मनी के कारण म्यूज़िक को मार्केट में उस तरह नहीं लाया जिससे वह 'पॉपुलर' हो जाए। इससे करीम भाई के कैरियर पर फ़र्क़ पड़ा। हवा उड़ी कि उनका संगीत पिट गया। 'सरगम' को जो नुक़सान हुआ वो तो अमरिन्दर कहीं और से पूरा कर लेगा। लड़ाई पुरानी थी। करीम भाई ने समद भाई से बात की। समद ने कहा– 'जा... जाके बात कर।' करीम को हिम्मत मिल गई। उसने अमरिन्दर के दफ़्तर में जाकर गाली-गलौच की।

— "ओए... चला जा करीमिये... नहीं तो साले उड़वा दूँगा... समझा कि नईं! और समद भाई से कहना उनका माल तो मैं दे ही दीत्ता है। सो उनसे तो मेरा झगड़ा नहीं... लेकिन साले तू म्यूजिक़ लाइन से होगा अब आउट। जा... चल जा...।"

फिर अमरिन्दर ने समद को फ़ोन किया, "देखो जी आपका मान करते हैं... आपसे हमारी कोई दुश्मनी नहीं हैगी... आप इस इशू में मत ही पड़ो जी!"

पिक्चर ख़त्म पर थी। समद भाई भी चुप हो गए। करीम ने सोचा समद का काम हो गया है वो इस चक्कर में नहीं पड़ने वाला इसलिए उसने एक-दूसरे गिरोह के आदमी को पकड़ा।

— "सुपारी?"

— "कितना?"

पैसा तय हो गया। अमरिन्दर सुबह-सुबह नंगे पैर माता के मंदिर में जाकर मत्था टेकता था फिर दफ़्तर में बैठता था। सुबह जैसे ही वह मंदिर में आया कि पीछे से पिस्तौल लिये मारने वाला भी आ गया। अमरिन्दर ने देखा तो भागा। भागा तो, गुण्डे ने भी पीछा किया। अमरिन्दर ने हाथ जोड़े। पिस्तौल वाला हँसा— 'भाग साले!' अमरिन्दर भागा लेकिन सामने दीवार आ गई और दोनों तरफ़ रास्ता बन्द। अमरिन्दर मुड़ा, उसने फिर हाथ जोड़े, इतने में पिस्तौल वाले ने गोली चला दी। पहले एक, फिर दो, फिर तीसरी। इससे पहले कि कोई वहाँ आता, पिस्तौल वाला भाग लिया।

म्यूज़िक इण्डस्ट्री में हड़कम्प मच गया। लोगों को शक सीधा करीम भाई पर गया। लेकिन करीम भाई का कहीं पता नहीं चला। किसी ने कहा कि वो पिछली रात ही हिन्दुस्तान से कहीं बाहर चला गया था।

अमरिन्दर मरा तो म्यूज़िक का जो प्लान बना था वो ठप्प हो गया। 'सरगम' बन्द हो गई। पत्रा वाला का म्यूज़िक ख़ला में खो गया।

म्यूज़िक पिक्चर की बहुत अहम् चीज़ होती है। जब वह ही नहीं तो पिक्चर का क्या होगा कौन जाने। लेकिन समद भाई की पिक्चर पर चोट थी। वो कहाँ चुप बैठने वाले। उन्होंने करीम के उस कॉन्ट्रेक्ट किलर का पता लगवाया। वह उस गिरोह का आदमी निकला जो कभी समद भाई के टुकड़ों पर पलता था। बाद में झगड़ा करके अलग हो गया था। जो लड़ाई पिक्चर की थी अब गैंगों के बीच शुरू हो गई। करीम भाई तो पहले ही भाग चुके थे। अमरिन्दर की कम्पनी ठप्प पड़ी थी। पत्रा वाला की फ़िल्म में सिर्फ़ एक फ़ाईट सीन और एक गाना शूट करना बचा था। रिलीज़ डेट तय थी। चँचल खन्ना कभी अपनी क़िस्मत को कोसता, कभी समद भाई को।

बहरहाल किसी तरह पिक्चर रिलीज़ हो गई। और पहले ही दिन की रिपोर्ट मिली— 'फ़्लॉप'। सोचा गया शायद अगले हफ़्ते तक चल निकले। लेकिन लोगों ने इस पिक्चर के कारण ख़ून-ख़राबे, गैंगवार की ख़बरें फ़िल्मी अख़बारों में पढ़ रखी थीं। हीरोइन में कोई दम नहीं था। चँचल को एक अजीब अंदाज में पेश किया गया था जो कि दर्शकों को पसंद नहीं आया। पिक्चर 'फ़्लॉप'!

इस बीच जो जो लोग चँचल को साइन कर रखे थे उन्होंने इसके अचानक डेट्स न होने के कारण किसी और स्टार को लेकर पिक्चर बनाना शुरू कर दिया था। अब चँचल का ऐसा हश्र देखकर लोगों ने उसके साथ पिक्चर न करना ज़्यादा पसंद किया। चँचल खन्ना जो रातों रात स्टार बन गया था एक दिन में ज़मीन पर आ गया।

बँगले और कार का कर्ज़ा अदा करना था और आमदनी सूख गई थी। बैंकों का रिवाज लोन देने का था नहीं। स्टार हुए नहीं कि अपनी रख-रखाव की झूठी शान के लिए फ़िल्म इण्डस्ट्री में ब्रोकर होते थे जो फ़िल्मों को फ़ाइनेंस करवाते थे और स्टार्स को इस प्रकार की ज़रूरतों के लिए 'लोन' भी दिलवाते थे। जैसे कि तारा था और तारा जैसे तमाम लोग। इनका कमीशन दो परसेन्ट होता और महाजन या फ़ाइनेंसर का ब्याज बीस से तीस परसेन्ट। सौदा बहुत मँहगा था। और अगर वक़्त पर क़िस्तों की अदायगी नहीं हुई तो ख़तरनाक भी। लेकिन हर धन्धे के अपने उसूल और अपनी ज़रूरतें होती हैं। जो झूठ और फ़रेब से लोगों का जी बहलाते हों उनमें सच तलाश करना भी बेकार है।

कुछ दिन तो इसमें गुज़र गए कि शायद कुछ और फ़िल्में आ जाएँ, कुछ और पैसा आ जाए। पहले चँचल के सैक्रेटरी ने, फिर चँचल ने खुद प्रोड्यूसरों-डायरेक्टरों से संपर्क बढ़ाने शुरू किये। लेकिन मुँह पे मुस्कुरा के हाँ करना तो इस दुनिया का नियम था। 'न' कौन करता है। धीरे-धीरे पैसा ख़त्म हो गया। लड़कियाँ जो लाइन लगाए रहती थीं, छोड़ गईं। शराब पीने वाले दोस्त कम होने लगे। बँगला बिकने की कगार पर आ गया। गाड़ी, जिसने क़िस्तों पर दी थी, वापस ले गया। चँचल सड़क पर आ गया।

दंगे थम गये थे। फ़ज़ा ठँडी पड़ गई थी। करीम पता लगा न्यूयॉर्क भाग गया था। उसने न्यूयॉर्क से इन्टर्व्यू देकर कहा था कि पिक्चरें तो वो अभी भी करेगा। म्यूज़िक का क्या है वो तो 'यहाँ से भी किया जा सकता है।' जिन लोगों का काम उसने अधूरा छोड़ा था वो भी दूसरा विकल्प ढूढने लगे। हालाँकि अमरिन्दर ख़त्म हो गया लेकिन वह करीम को भी ख़त्म कर गया।

कुछ दिनों बाद दीवान साहब की पिक्चर रिलीज़ हुई। पुरानी, ज़रा उम्र वाली हीरोइन से एक नये नवेले नौजवान लड़के के इश्क़ की कहानी लोगों को पसंद आ गई। फ़िल्म को हाथों-हाथ लिया गया। आशा देवी और सलिल का इश्क़ भी कई पादानें ऊपर चढ़ चुका था। लेकिन पिक्चर हिट होने के बाद अब आशा देवी को शादी की कोई जल्दी नहीं थी। क्योंकि उनका स्टारडम बरक़रार था और इतनी जल्दी वो रिटायर होने वाली नहीं थीं। सलिल अपनी पहली फ़िल्म में ही मान लिया गया था— उभरता हुआ कामयाब सितारा! इस फ़िल्म से तो वह बाक़ायदा स्टार बन गया। ब्रोकर उसके भी चक्कर लगाने लगे— 'सर! अब बँगला ले लीजिए। ये फ़्लैट में रहना आपको शोभा नहीं देता। फ़ाइनेंस मैं करवाता हूँ... जितना कम हो सके उतने कम इन्ट्रेस्ट पर।'

जब सुबह से शाम तक चारों तरफ़ लोग किसी को महान और कामयाब कहते रहते हों तो असर तो आदमी पर पड़ता ही है। दीवान का कॉन्ट्रैक्ट ख़त्म होने में तीन महीने और थे। लेकिन सलिल अब स्टार था। उससे बिगाड़ करना ठीक नहीं

था यह तो दीवान जी भी समझते थे। पुराने प्रोड्यूसर थे— क्या पता कब सलिल की ज़रूरत पड़ जाए।

— "तू बेटा है मेरा... मार गोली कॉन्ट्रैक्ट को यार! एक फ़ॉरमेलिटी थी हो गई।" हालाँकि वो भी जानते थे कि सलिल ने अपने सैक्रेटरी की मदद से तमाम फ़िल्मों का साइनिंग एमाउंट ले रखा है और अब धीरे-धीरे उन फ़िल्मों की शुरुआत होगी। जिसका मतलब है कि क़रीब दो-तीन साल तक सलिल के पास काम की कमी नहीं रहेगी। हाँ इस बीच अगर उसकी फ़िल्में लगातार 'फ़्लॉप' होती गईं तब और बात है।

सलिल के पास हफ़्ते भर के ही उन्दर एक इम्पाला गाड़ी और एक बँगला आ गया। बँगला देख तो उसने रखा ही था। तब पैसा नहीं था। पिता जी को पाँच हज़ार भी उसने प्रोडक्शन से कह कर दिलवाए थे। पैसा फ़िल्म वालों के पास नहीं होता। पैसे का दिखावा होता है। पैसा तो उसके पास अब भी नहीं था हाँ! पैसा देने वाले पैदा हो गए थे। **जैसे-जैसे** फ़िल्मों के पैसे इन्स्टॉलमेंट में मिलते जाते वैसे-वैसे सूद के साथ लोन अदा किया जाता। आख़िर में बचता बचाता कुछ नहीं था। सिर्फ़ खोखली शान।

फ़्लैट से बँगले में शिफ़्ट करने का जब तय हुआ तो सलिल ने घर पर ख़त भिजवा दिया कि सब लोग ललितपुर छोड़कर यहाँ बंबई आ जाएँ। इससे एक तो सब साथ रहेंगे और बुढ़ापे में माँ-बाप की डाक्टरी देखभाल अच्छी तरह होगी। दूसरी बात ये थी कि बहन की पढ़ाई-लिखाई भी वहाँ से अच्छी हो सकेगी। वहाँ से जवाब आया कि मकान में ताला लगाकर आना मुश्किल है क्योंकि लोकल नेता लोग ख़ाली मकान देखकर ताला तोड़कर घुस जाते हैं और मकान पर क़ब्ज़ा जमा लेते हैं। हाँ... वो लोग आते-जाते ज़रूर बने रहेंगे।

पिता जी का सीना फूल गया था। अब वो शहर में ठाठ से घूमने जाते थे और कोई अगर उनसे सलिल के स्टारडम की तारीफ़ करता तो बड़ी शान से केवल मुस्कुरा देते और उससे बताना न भूलते कि 'भाई वो तो बड़ा आदमी है। गाड़ी के नीचे पाँव नहीं रखता। हमें भेजा तो बोला अरे आप फ़र्स्ट क्लास से नीचे कैसे जा सकते हैं? फिर ढेर सारे रुपये उसने मेरे हाथ पर रख दिये— रास्ते में काम आएँगे!... बताइये!'

श्यामा प्रसाद का रूख़ सलिल के लिए बदल चुका था। उनका बेटा स्टार है और बड़ा आदमी है, यह बात उनके सर में घर कर चुकी थी। सर हवा में तन चुका था और सीना फूल चुका था।

फ़्लैट से बँगले में शिफ़्टिंग की तैयारी ही चल रही थी कि एक दिन रात को फ़ोन की घंटी बजी। नौकर ने उठाया। सलिल से बोला— 'रज़ाक साहब।'

सलिल ने पहले तो परेशानी से माथे पर हाथ मारा फिर आहिस्ता से नौकर से कहा, "कह दो घर पर नहीं है।"

नौकर ने कह दिया। लेकिन रज़ाक समझ गया कि घर पर होने के बावजूद सलिल ने 'नहीं हैं' कहलवा दिया है। उस दिन के बाद रज़ाक ने अपनी क़िस्मत से समझौता कर लिया और समझ लिया कि किसी की मदद करने का मतलब ये नहीं है कि वह भी पलटकर

मदद करेगा या आजीवन आभार मानेगा। थोड़ी देर में फिर किसी ने फ़ोन किया और सलिल को ख़बर दी कि यूसुफ़ के घर इनकम टैक्स की रेड पड़ी है।

दूसरे दिन शाम को दीवान साहब की फ़िल्म हिट होने की पार्टी थी। ताज में। वहाँ तमाम प्रोड्यूसर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, एक्टर्स गर्ज़े कि आधी इण्डस्ट्री इनवाइटेड थी। लोगों में चर्चे होने लगे।

— "यूसुफ़ के घर रेड! वो तो वैसे ही बेकार-सी।"

— "कोई पुराना टैक्स का मामला होगा।"

फिर किसी ने कहा "ओ कैरियर चौपट सी... यूसुफ़ सारी ज़िन्दगी स्टार रहा है। न्यूज़ में रहने की आदत पड़ गई है। उसने अपने दोस्त इनकम टैक्स वालों से कहकर यह रेड मैनीपुलेट करवाई है ताकि उसकी फ़ोटो अख़बारों में आए... न्यूज़ छपे। लोग चेहरा देखेंगे तो शायद फिर से काम मिले।"

इस पार्टी में प्रोड्यूसर्स एसोसिएशन के प्रैसीडेंट सिप्पी साहब भी थे। उन्होंने दीवान साहब की पीठ थपथपाई— "क्या ग़ज़ब पिक्चर बनाई है दीवान जी... वाह! ...आपकी हर पिक्चर में कोई बात होती है। नया लड़का लिया और स्टार बना दिया। आपके हाथ में जादू है जी, जादू... जहाँ लगाते हो मिट्टी को सोना बना देते हो!"

दीवान साहब ने भी सिप्पी साहब का शुक्रिया अदा किया। दोनों गले मिले। लेकिन दोनों में से किसी ने भी एसोसिएशन में हुए झगड़े और बदमग़ज़ी की बात नहीं निकाली। जो गुज़र गया वो गुज़र गया। रिश्तों में खटास नहीं आनी चाहिए। न जाने कौन कब किसके काम आ जाए। कल को दीवान जी ही एसोसिएशन के प्रैसीडेंट हो जाएँ तो!?

15

रात के बारह के आसपास टेलीफ़ोन की घंटी बजी।

– "दीवान चंद जी?"

– "कौन बोल रहा है?" दीवान जी की पत्नी ने तुर्श टोन में पूछा।

– "मैं आर.के.सिंह मैडम।"

– "इस समय? कल सुबह ऑफ़िस में फ़ोन कीजिए।"

– "सुनिये सुनिये... मैं दिल्ली से आर.के. सिंह भारत सरकार की ओर से बोल रहा हूँ।"

– "कौन है?" दीवान जी ने कुरता ठीक करते हुए पूछा।

पत्नी ने माउथ पीस पर हाथ रखकर कहा, "कहता है भारत सरकार की ओर से..."

दीवान जी ने फ़ोन तक़रीबन पत्नी के हाथ से छुड़ा ही तो लिया।

– "कौन?"

– "दीवान जी?"

– "हाँ जी!"

– "नमस्कार दीवान जी... मैं आर.के. सिंह, ज्वाइंट सैक्रेटरी... दिल्ली से।"

– "हाँ जी... हाँ जी सिंग साहब! अरे तो पहले बोला होता यार... आप भी न... बोलते हो भारत सरकार की ओर से बोल रहा हूँ...! बोलो, बोलो... इतनी रात को? बम्बई आए हो क्या?"

– "ओ नहीं... बंबई नहीं... आपको ख़ुशख़बरी देनी है। अभी-अभी पता चला तो रहा नहीं गया इसलिए अभी ही फ़ोन कर दिया।"

– "क्या ख़ुशख़बरी है भाई?"

– "आपकी पिक्चर को नैशनल एवार्ड देना निश्चित हुआ है।" दीवान जी की समझ में नहीं आया कि क्या जवाब दें। बुद्धि जड़ हो गई। बोल फूटा नहीं।

– "क्या हुआ... कोई ख़ुशी नहीं हुई लगता है।"

– "नहीं, नहीं सिंह साहब... आई एम वैरी हैप्पी एण्ड थैंक्यू... ये तो आपने बड़ी अच्छी ख़बर सुनाई। अब तो पार्टी करनी पड़ेगी।"

– "अब तो पार्टी करनी ही पड़ेगी। नैक्स्ट वीक बम्बई आ ही रहा हूँ। गुडनाईट!"

– "गुडनाईट।"

पत्नी ताज्जुब से पति को देख रही थी। दीवान ने फ़ोन रखा तो उसने पूछा, "क्या हुआ?"

– "पिक्चर को नैशनल अवार्ड दे रहे हैं।"

– "ओ रब्बा! ये तो बड़ी ख़ुशी की गल सी।"

– "हाँ जी... हाँ जी!"

दो दिन बाद दिल्ली से सरकारी तौर पर चिट्ठी आ गई कि दीवान जी की हालिया रिलीज़्ड फ़िल्म को जूरी ने बैस्ट फ़िल्म माना है और फ़लाँ-फ़लाँ तारीख़ को दीवान जी विज्ञान भवन में अपनी पिक्चर का एवार्ड लेने के लिए समारोह में आमंत्रित हैं।

16

दोपहर के एक बजे थे। मौसम साफ़ था। फ़िल्मिस्तान के गेट में सलिल की इम्पाला घुसी तो वाचमैन ने सलाम किया। सलिल ने उसे काले शीशों के पीछे से काला चश्मा चढ़ाई आँखों से देखा या नहीं, यह कहना मुश्किल है।

स्टेज टू पर शूटिंग थी। लोग सलिल का नौ बजे से इन्तज़ार कर रहे थे। वो जब गाड़ी से उतरा तो डायरेक्टर, प्रोड्यूसर सब हाथ मिलाकर उसको वैलकम करने आ गए। अभी तक सब उसके लेट हो जाने के कारण होने वाले नुक़सान पर उसे कोस रहे थे लेकिन उसकी सूरत देखते ही उनके चेहरे मुस्कुराहटों से खिल उठे।

सलिल सीधे मेकअप रूम में जाने लगा। रास्ता कैन्टीन के पास से होकर गुज़रता था। पता नहीं क्यों आज अचानक उसे इस जगह को देखकर याद आ गया वो दिन जब उसने यहाँ पहली बार रज़ाक के साथ ऑमलेट-पाव खाया था और बग़ल की सीढ़ियों के नीचे बारिश की वो रात गुज़ारी थी। लेकिन उसकी नज़र फिर वहाँ से फ़ौरन हट गयी। जैसे वो ये सब बेकार की बातें सोचना नहीं चाहता था। वो सीधा अपने मेकअप रूम में चला गया। तीन चार चाहने वाले, मेकअप वाला, कॉस्ट्यूम वाला, असिस्टेंटस, प्रोड्यूसर, सब लोग मजमा लगाकर उसके साथ-साथ हो लिए।

– "खाना खाया जाए सर?" प्रोड्यूसर ने सलिल से पूछा।

– "मँगाया कहाँ से है?"

– "ताज... ताजमहल होटल से सर! और आपके लिए कहाँ से मँगवाएँगे सर! हमेशा की ही तो बात है।" प्रोड्यूसर ने सफ़ाई दी।

– "लगवाइये।"

– "ऐ! खाना लगवाओ... और हीरोइन मैडम और डायरेक्टर साहब को बुलवाओ।"

बाकी यूनिट का खाना अलग था। इन चुनींदा लोगों का खाना ताज से आया था और लगाया भी अलग जगह पर गया था और अलग प्लेटों में।

खाना खाते में इधर-उधर की बेकार की बातें हुई। दूसरी पिक्चरों के हिट फ़्लॉप होने वाले आंकड़ों पर चर्चा हुई। कौन नया लड़का / लड़की किस फ़िल्म में आया है या आने वाला है, इसकी बातचीत हुई। हालाँकि सब बड़ी अंतरंग तरीक़े से एक-दूसरे से पेश आ रहे थे लेकिन दिल से सब एक-दूसरे को झेल रहे थे। प्रोड्यूसर को ये लगी थी कि किस

तरह कम-से-कम पैसे में जितनी जल्दी हो सके ये पिक्चर ख़त्म हो। सलिल को यह था कि किस तरह यह फ़िल्म कुछ और अच्छी बने ताकि वह और बड़ा स्टार बन सके। डायरेक्टर इस जुगाड़ में था कि कब इस फ़िल्म की हवा मार्केट में बने और किस तरह से वो बड़ी-बड़ी दो-तीन और पिक्चरें साइन कर ले। हीरोइन इस चक्कर में थी कि किस तरह सलिल और प्रोड्यूसर / डायरेक्टर को इतना इम्प्रैस कर सके कि वो अगली पिक्चर में भी उसे ही लें। बाक़ी लोगों का ये था कि ये लोग ऐसे ही पिक्चर बनाते रहें, इनकी शूटिंग इसी तरह चलती रहे और इसी तरह उन्हें रोज़ मुफ़्त का खाने को मिलता रहे।

जब खाना ख़त्म हुआ तो प्रोड्यूसर ने कहा, "अब आप थोड़ा आराम कर लो सर!"

सलिल ने हाथ ऊपर करके अँगड़ाई ली और जूते उतारकर सोफ़े पर पहुँच गया। सब अपने-अपने हो लिये।

चार बजे के आसपास उसके दरवाज़े पर दस्तक हुई।

– "येस?" सलिल ने अन्दर से कहा।

डायरेक्शन असिस्टेंट ने आहिस्ता से दरवाज़ा खोला और अंदर झाँक कर कहा, "सर शॉट रेडी है।"

– "हाऊ डू यू सी मी?" सलिल ने उस नौजवान की तरफ़ नज़र उठाकर पूछा।

लड़के की समझ में नहीं आया कि क्या जवाब दे।

– "आई एम हाफ़ लाइँग," सलिल ने जैसे उसकी मदद की, "एण्ड आई एम रीडिंग दिस बुक...! इट इज़ एन इँट्रेस्टिंग बुक। थोड़ी देर और पढ़ूँगा फिर चाय पियूँगा और तब तुम आना कॉस्ट्यूम दे जाना। मैं शॉट के लिए तैयार होकर आ जाऊँगा।"

सलिल बड़ा स्टार था। अच्छे-अच्छों की उससे सीधे बात करने की हिम्मत नहीं थी। लड़का सर हिलाकर वापस चला गया।

सलिल फिर से पहुड़ गया। उसने जो किताब लड़के के सामने उठा ली थी उसे बग़ल में पटक दिया और उसके चेहरे पर एक अजीब-सी मुस्कुराहट तैर गई। थोड़ी देर में चाय आएगी!

नाम : अशोक कुमार

जन्म : 1951, झाँसी, उ.प्र.

शिक्षा : बी.एस.सी. (कानपुर)
एल.एल.बी. (मुंबई), एम.ए.
टी.वी. प्रोडक्शन (लंदन)

कार्यक्षेत्र : – शॉर्ट फ़िल्म निर्माता-निर्देशक

- टी.वी. चैनलों में रह चुके प्रोग्रामिंग चीफ़
- फ़िल्म संस्थान पूना तथा माइका अहमदाबाद में प्रोफ़ेसर
- मीडिया कॉलमनिस्ट
- हिन्दी/उर्दू पत्रिकाओं में प्रकाशित
- मीडया तथा सिनेमा/टी.वी के विज़िटिंग फैकल्टी

संपर्क : kumar-incomm@yahoo.co.uk

- शादी? तुम्हारा दिमाग ख़राब हो गया है।
- क्यों? सभी लड़कियाँ करती हैं.....तुमने भी की थी।
- अरे वो ही तो एक कमबख़्त गलती की थी मैंने।
- वो गलती न करती तो मैं न होती .....मैं न होती तो तुम्हारे ये जो साजो-सिंगार हैं न......ये गाड़ी में घूमना, ये फाइवस्टार में ठहरना, ये सोने से लदे रहना, ये बड़े बड़े लोगों में उठना-बैठना......ये सब कुछ नहीं होता। तुम वहीं कोलीवाड़ा के मुर्गीखाने की टूटी बिल्डिंग वाले फ्लैट में रह रही होती।
- मत भूलों कि तुम्हें स्टार मैंने बनाया है।
- माई फुट! मुझसे रंडी-बाज़ी करवाई है तुमने।

₹150/-

नमन प्रकाशन

4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002
दूरभाष : 23247003, 23254306
Fax No. 011-23254306